Con. 3. IX-3.49
320

अंक 9
संख्या 3

मंगलवार,
2 अगस्त
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

प्रतिज्ञा-ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर..... 127

संविधान का प्रारूप—*(जारी)*

[अनुच्छेद 213, 213-क, 214 और 275 पर विचार] 127-191

भारतीय संविधान सभा

मंगलवार, 2 अगस्त सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा, कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 9 बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

प्रतिज्ञा ग्रहण तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर

निम्नलिखित सदस्य ने प्रतिज्ञा-ग्रहण की और रजिस्टर पर हस्ताक्षर किया।

श्री शान्तिलाल एच. शाह (बम्बई : जनरल)

संविधान का प्रारूप—*(जारी)*

अनुच्छेद 213—*(जारी)*

***अध्यक्ष:** जिस अनुच्छेद पर हम कल विचार कर रहे थे उस पर अब बहस जारी करते हैं। पण्डित ठाकुरदास भार्गव!

पं. ठाकुरदास भार्गव (पूर्वी पंजाब : जनरल): जनाब प्रेसीडेण्ट साहब, हाउस के सामने जो मौजूदा दफा 213 मौजूद है वह उस तजवीज से जोकि ड्राफ्ट कांस्टीट्यूशन में थी बड़ी हद तक मुख्तलिफ है। यह तजवीज जो कि अब हाउस के सामने है उसके बारे में यह कहा जा सकता है कि यह पहले के मुकाबले में बड़ी रिट्रोगेट है, बड़ी रिएक्शनरी है क्योंकि पहले जो तजवीज थी उसमें यह दुरुस्त है कि अख्तियार प्रेसीडेण्ट साहब को दिया गया था, लेकिन प्रेसीडेण्ट साहब अगर 213 दफा के अपने अख्तियारात को इस्तेमाल करते तो उनको अख्तियार था कि एक लोकल लेजिस्लेचर बना दें, या एक काउंसिल ऑफ एडवाइजर्स बना दे या दोनों बना दें। लेकिन यह अख्तियार न था कि 213 पर वह अमल करें और लोकल लेजिस्लेचर न बनाये; अख्तियार न था कि वह एक ऐसी चीज बना दें जिसके वास्ते यह तो कहा जा सके कि बाड़ी एक लेजिस्लेचर की तरह काम कर सकता है लेकिन फिलवाकै वह लेजिस्लेचर न हो। आज के दिन लेजिस्लेचर से जो मुराद समझा जाता है वह यह है कि उसके अन्दर मिनिस्टर हों, उसको काफी अख्तियार हों और उसके अन्दर ज्यादातर इलेक्टेड एलीमेण्ट हों। लेकिन अब जो अमेण्डमेण्ट पेश किया जाता है वह यह है कि प्रेसीडेण्ट साहब जी नहीं बल्कि पार्लियामेंट को यह अख्तियार है। जहां तक यह तब्दीली है वहां तक तो यह दुरुस्त है और इसको मैं अच्छा समझता हूं कि पार्लियामेंट को अख्तियार दिया गया है। लेकिन जो इस तजवीज का अगला हिस्सा है जिसमें कि यह लिखा है: 'a body, whether nominated, elected or partly nominated and partly elected,

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

to function as a Legislature for the State.' और दूसरी चीज जो रखी है वह है काउंसिल आफ एडवाइजर्स और मिनिस्टर्स, इसके मुताल्लिक मैं हाउस के सामने यह अर्ज करना चाहता हूं कि हाउस को इस तबदीली को, कि लैजिस्लेचर के बजाय बाडी हो जाये मंजूर नहीं करना चाहिये। इस जमाने में हम यह चाहते हैं कि हिन्दुस्तान का कोई भी इलाका हो उसमें स्वराज की सारी बरकतें यकसां तरीके पर हों। ऐसा न हो कि कोई इलाका ऐसा बन जाये जिसके अन्दर एक बाडी हो और उस इलाके के रहने वालों को अपने एडमिनिस्ट्रेशन में कोई राइट न हो और उन्हें अपने मामलों को सुलझाने का कोई मौका न मिले। ऐसा बाड़ी हम नहीं चाहते। सच तो यह है कि इस सेक्शन में ऐसे इलाके भी शामिल है जो कि कम डेवलप हुये हैं। इसके अन्दर उनके लिये ऐसा प्रावीजन किया गया है जिससे मैं समझता हूं कि कांस्टीट्यूशन यह फैसला करना चाहता है कि दिल्ली कुर्ग, अजमेर-मेरवाड़ा का क्या कांस्टीट्यूशन हो यह अख्तियार पार्लियामेंट को सौंप दिया जाये। जो कि हालात आज हैं उनमें यह बात एक हद तक दुरुस्त है। मैं नहीं समझता कि हालात में इसके सिवा कांस्टीट्यूएंट असेम्बली कर भी क्या सकती थी। आज अजमेर-मेरवाड़ा की तरह के छोटे-छोटे इलाकों को किस्मतें फ्लूइड स्टेट में हैं।

अजमेर-मेरवाड़ा के बारे में यह कहा जाता है कि उसे राजस्थान का हिस्सा बना दिया जाये, कुर्ग के बारे में कहा जाता है कि उसे माइसोर का हिस्सा बना दिया जाये या मद्रास का हिस्सा बना दिया जाये और पन्थ पिपलौदा के बारे में भी इसी तरह की बातें कही जाती हैं। कच्छ और हिमाचल प्रदेश जैसे इलाकों की पोजीशन भी फ्लूइड स्टेट में है। ऐसी हालत में कांस्टीट्यूएंट असेम्बली के वास्ते यह मुश्किल था कि वह हर एक इलाके के बारे में अलग फैसला कर ले। यह ठीक न होगा कि जब तक हालात इजाजत न दें तब तक ऐसी पक्की चीज बना दी जाये जो चाहे दुरुस्त भी न हो। इस वास्ते यह फैसला एक तरह से बिल्कुल जायज और वक्त के मुताबिक है गो मैं यह नहीं चाहता कि कोई इलाका ऐसा रखा जाये कि जहां लोकल लेजिस्लेचर न हो और जहां के लोगों को अपने मामलात को संभालने का अख्तियार न दिया जाये। इसके अन्दर रखा है कि "whether nominated, elected or partly elected and partly nominated" अगर सारा बाडी नामीनेटेड हो तो मैं नहीं समझता कि वह कौन सा इलाका ऐसा पसमांदा होगा कि जिसको किसी किस्म का हक चुनाव न दिया जाये। कुर्ग में असेम्बली मौजूद है। छह रोज के वास्ते एक साल में वह असेम्बली बैठती है। वहां का चीफ कमिश्नर ही उसका प्रेसीडेंट है, डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट होम मेम्बर है और डिस्ट्रिक्ट जज ला मेम्बर है। आज के जमाने में जबकि छोटे-छोटे सूबों में लेजिस्लेचर का ढकोसला बना हुआ है वह एक बेमाइनी की चीज है। लेकिन यह मामला हर एक इलाके के हालात के मुताबिक तय किया जाना चाहिये। जहां तक हिमाचल प्रदेश का ताल्लुक है यह एक ऐसा इलाका है जो नया बना है। इसमें कुछ नया हिस्सा है कुछ पुराना हिस्सा ईस्ट पंजाब का है। अच्छा होता कि इस सारे को ईस्ट पंजाब के साथ मिला दिया जाता। जमाना बतलायेगा कि गवर्नमेंट की यह छोटे-छोटे सूबे बनाने की और इलाकों को सेण्ट्रली एडमिनिस्टर्ड एरिया में शामिल

करने की पालिसी कहां तक वाजिब है। सेण्ट्रली एडमिनिस्टर्ड एरिया की यह तारीफ की जाती है कि वहां के रहने वाले उसका इन्तिजाम न करें और सेण्ट्रल गवर्नमेण्ट उनका इन्तिजाम करे। अगर आप सैक्शन 278 को पास कर देंगे तो आप इस बारे में और भी इजाफा कर देंगे जो कि मैं समझता हूं अच्छा न होगा। इसके मुताबिक जिस इलाके का इन्तिजाम अच्छा न होगा उसको सेण्ट्रली एडमिनिस्टर्ड एरिया में शामिल कर लिया जायेगा। यह चीज दिल्ली के लिये भी लागू हो सकती है जैसा कि श्री देशबन्धु गुप्ता ने कहा था और जिसकी कि मैं ताईद करता हूं। आज जो इन्तिजाम दिल्ली में है वह शायद ऐसा अच्छा नहीं है जैसाकि सूबों में बतलाया जाता है। सन् 1911 से दिल्ली ने ईस्ट पंजाब से अलग होकर अलहदा सूबे की सूरत अख्तियार की। सन् 1946, 1947 में मैंने पार्लियामेंट में दिल्ली के बारे में कुछ सवालात किये थे जिनसे पता लगता है कि दिल्ली में ईस्ट पंजाब की बनिस्बत से अस्पताल कम हैं और स्कूल भी कम हैं और दिल्ली में तरह-तरह की दिक्कतें हैं। जिस वक्त कलकत्ते से दारुलखिलाफा दिल्ली लाया गया था उस वक्त यह कहा गया था कि अगर किसी जगह दो सूबों की राजधानी हो तो उसके इन्तिजाम में दिक्कत होती है। दिल्ली के बारे में यह कहा गया था कि इसको हिन्दुस्तान की राजधानी इसलिये बनाया जाता है कि यह किसी सूबे की राजधानी नहीं है। यहां किसी का इन्फलूएन्स नहीं होगा; मैं नहीं जानता कि यह बात कहां तक जायज है क्योंकि दुनिया में बहुत सी ऐसी राजधानियां हैं जो सूबों की भी राजधानियां हैं और सेण्ट्रल गवर्नमेंट की भी राजधानियां हैं। लेकिन इस मामले को छोड़कर आज के अमेंडमेंट से दिल्ली के मुताल्लिक जो सवाल पैदा होता है उसके दो पहलू हैं। एक तो यह कि दिल्ली मौजूदा शक्ल में रहे तो उसके क्या अख्तियारात हों और दूसरा सवाल यह है कि आया दिल्ली के साथ वही सलूक किया जाये जो कि और छोटे-छोटे इलाकों के साथ किया जा सकता है। और मैं आपकी इजाजत से इन दोनों बातों पर अर्ज करना चाहता हूं और प्रेसीडेंट साहब से और हाउस के इण्डलजेन्स चाहता हूं। इस मसले में हरियाना प्रान्त के लोग बहुत ज्यादा इंटरेस्ट रखते हैं। यह 353 गांवों का बना हुआ एक छोटा सा सूबा है। यह हमेशा से, सदियों से हरियाना प्रान्त का हिस्सा रहा है। पानीपत की तीन लड़ाइयां इस हरियाना प्रान्त पर गलबा पाने के लिए लड़ी गईं थीं।

गदर के जमाने में जब लोगों ने बगावत की तब भी, उस जमाने में भी यह इलाका दिल्ली के ही साथ रहा। सन् 1957 ई. में जब अंग्रेजों के खिलाफ यहां पर गदर हुआ तो सजा के तौर पर यह दिल्ली का इलाका, हरियाना प्रान्त जिसके अन्दर हिसार, रोहतक, गुड़गांवा और करनाल यह चार और पांच जिले शामिल हैं उन्हें सजा के तौर पर पंजाब में शामिल कर दिया। नतीजा यह हुआ कि हमारा इलाका पंजाब का इलाका बन गया और हमारे साथ दलितों वाला सलूक किया गया, हमारे इलाके को कोई हक नहीं दिया गया, अगर नहरें बनाई तो मगरबी हिस्से में; हमें हर तरह से महरुम रखा गया। हमें पानी नहीं दिया गया, हमें एजुकेशन नहीं दी गई और हम पर वह ज्यादती की गई जिसकी कि आज हिस्ट्री बन गई है। मैं इतना अर्ज करना चाहता हूं कि इस इलाके के लोग बहुत समय से यह आशा लगाये बैठे थे कि जब स्वराज्य होगा तो उनकी तकलीफे जितनी भी हैं वह सब दूर हो जायेंगी।

सन् 1909 ई. में हमने एक मूवमेंट शुरू किया जिसमें यह मांग रखी कि हमारा इलाका पंजाब से अलग कर दिया जाये। सन् 1919 ई. और सन् 1928 ई.

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

में इस मूवमेंट ने काफी जोर पकड़ा। आनरेबिल हिज एक्सीलैन्सी मि. आसफअली और लाला देशबन्धु जो कि अब ईस्ट पंजाब से इधर पानीपत दिल्ली भाग आये हैं उसके नेता थे। हम लोग जो कि छोटे-छोटे कार्यकर्त्ता थे उन्होंने इस मूवमेंट में उनका साथ दिया और काफी इस इलाके के लिए लड़े। सन् 1928 ई. में जब महात्मा गांधी और मिस्टर जिन्ना दोनों ने इस बात को कबूल किया कि अम्बाला डिवीजन, आगरा और मेरठ डिवीजन का एक सूबा बना दिया जाये, एक स्कीम भी इसके लिये मि. कौरबेट ने बनाई थी जिसको कौरबेट स्कीम कहते हैं। लेकिन उस वक्त हमारी मांग पूरी नहीं हो सकी और राउण्ड टेबिल कांफ्रेस ने हमारी मांग के खिलाफ फैसला कर दिया। अगर उस समय यह बात हो जाती तो हमारे देश का इतिहास ही बदला हुआ होता।

इसके बाद जब कैबिनेट मिशन आया तो उस समय भी हमने अपनी यह आवाज उठाई कैबिनेट मिशन हमारे इस इलाके को पाकिस्तान के एरिया में शामिल करना चाहता था। हमने इसके खिलाफ उस समय काफी आवाज उठाई। हम नहीं चाहते थे कि हमारा वह इलाका जिसने हमेशा से तकलीफें उठाई हैं फिर हमेशा के लिए ऐसे इलाके में शामिल किया जा रहा था जहां से वह फिर कभी भी नहीं उठ सकता था। और उन उसके फौलादी पंजे से हम छूट सकते थे। मगर ईश्वर की कृपा हुई कि हमारी कौम के लीडरों ने बिल्कुल ठीक फैसला किया और जिसकी वजह से ऐसा पार्टीशन कबूल किया कि ईस्ट पंजाब अब एक तरह से उस पंजे से बिल्कुल छूट गया।

हमने अर्से तक इस बात की कोशिश की कि दिल्ली का प्रान्त और ईस्ट पंजाब के कुछ जिले जो कि पहले दिल्ली के ही जिले थे उनमें कुछ यू.पी. के जिले मिला करके एक छोटा सा सूबा बना दिया जाये क्योंकि इन इलाकों का रहन सहन और बोल चाल एक तरह की थी। लेकिन पहले तो यह बन न सकी और अब यह Practical Politics के दायरे के बाहर हो गई। मैं हरगिज नहीं चाहता कि हमारे देश के छोटे-छोटे टुकड़े हो जायें जिससे कि हमें जो नई आजादी मिली है हम उसको न सम्भाल सकें और हम आपस में ही इन छोटी-छोटी बातों में फंस जायें। मैं अर्ज करना चाहता हूं कि अगर हिन्दुस्तान की आजादी कायम रखने के लिये अगर कोई चीज खराब है तो वह प्राविंसलिज्म है। मैं चाहता हूं कि यह प्राविंसलिज्म का भूत हमारे देश से बिल्कुल निकाल दिया जाये। अगर यह चीज हमेशा के वास्ते नहीं निकाली जाती तो इससे हमारी आपस में फूट पैदा हो जायेगी और हिन्दुस्तान के अन्दर एक तरह से सिविल वार जैसी स्थिति हो जायेगी।

मेरी तजवीज यह है कि दिल्ली का और नई दिल्ली का जो हल है वह यह है कि नई दिल्ली को तो दिल्ली से अलग कर दिया जाये और उसका जिस तरह से भी शासन प्रबन्ध बनाया जाये वह किया जाये। मगर दिल्ली के वास्ते जो बिल्कुल ठीक सोल्यूशन है वह यह है कि पुरानी दिल्ली व दिल्ली के 353 गांवों को, हरियाना को ईस्ट पंजाब में शामिल कर दिया जाये। और ईस्ट पंजाब के साथ हिमाचल प्रदेश को भी शामिल कर दिया जाये। जो हमारे साथ मिला दिये जायेंगे हम उन लोगों के साथ अच्छी तरह से मिल-जुलकर रहेंगे और जो कुछ भी तकलीफ हमारी और उनकी है वह दूर की जायेंगी। हरियाने के प्रान्त वाले जिनका दिल्ली भी एक हिस्सा है, यह चाहते हैं कि दिल्ली ईस्ट पंजाब में शामिल होनी चाहिये।

इसके अलावा मैं अर्ज करना चाहता हूं कि यू.पी. का बहुत बड़ा सूबा है और उसकी आबादी करीब 5 करोड़ से भी ज्यादा है। जैसाकि कल गुप्ता जी ने कहा था कि अगर इसमें से कुछ हिस्सा दिल्ली प्रान्त में मिला दिया जाता तो बहुत अच्छा होता। मगर मैं अदब से अर्ज करूंगा कि हमारे यू.पी. के भाई हम लोगों से कहते हैं कि तुम हमारे नजदीक मत आओ। मेरठ का डिवीजन जो कि हिसार से बिल्कुल मिला-जुला है और जहां के रहन-सहन और बोल-चाल में बिल्कुल भी फर्क नहीं है। अगर आगरा और मेरठ डिवीजन के एक करोड़ आदमी उन सबको-मिलाकर ईस्ट पंजाब में मिलाकर जिसमें पेपसु व हिमाचल प्रदेश व दिल्ली भी शामिल है एक तीन करोड़ का सूबा बना दिया जाता तो मुनासिब है आयन्दा आने वाले जमाने में छोटे सूबों के लिये कोई जगह नहीं है और उनका सेण्टर व फीडिनेशन में कोई रसूक व जोर नहीं होगा इसलिये हम सबको मिल जाना चाहिये।

जैसाकि कल गुप्ता जी ने फरमाया कि ईस्ट पंजाब के लोग हमको छोड़ना चाहते हैं, चाहे उन्होंने यह बात गलत तौर पर या सही तौर पर अपने ख्याल से कही हो, मगर मैं उनको यह बात बतलाना चाहता हूं कि उनका यह ख्याल बिल्कुल गलत है। कल ही, आपको मालूम होना चाहिये, इस दिल्ली के शहर में ईस्ट पंजाब के व्यापारियों की एक कांफ्रेन्स हुई थी जिसमें यह मांग की गई थी कि गल्ले के मामले में ईस्ट पंजाब और दिल्ली को एक ही समझा जाये और दिल्ली को खुराक के मामले में ईस्ट पंजाब के साथ शामिल कर दिया जाये। अगर हमारे दिलों में इस तरह का ख्याल होता तो हम कल की कांफ्रेन्स में इस तरह की मांग पेश नहीं करते। मैं दावे के साथ कहता हूं कि गुप्ता जी ने जो बात फरमाई है वह बिल्कुल गलत है। मैंने प्राइम मिनिस्टर साहब से सितम्बर 1947 में कहा कि आप ईस्ट पंजाब दारूलखिलाफा दिल्ली को बना दीजिये। नई दिल्ली को आप उससे अलग कर दीजिये और उसको आप जिस तरह से भी चाहें बनाइये। चाहे आप उसको वाशिंगटन की तरह बनायें, उसके लिए हम लोगों को कोई भी एतराज नहीं होगा। शिकायत की गई है कि हाईकोर्ट बहुत दूर है। तो मैं अदब से अर्ज़ करना चाहता हूं कि क्या यू.पी. में मेरठ से लोग 300 मील का सफर करके इलाहाबाद नहीं जाते हैं? क्या हिसार के लोग और रोहतक के लोग शिमला नहीं जाते हैं? हाईकोर्ट भी अगर बनानी चाहिये तो वह भी दिल्ली में ही बनानी चाहिये और इसका कारण यह होगा कि जब ईस्ट पंजाब की राजधानी दिल्ली होगी तो हाईकोर्ट भी वहां पर ही होना चाहिये।

श्री देशबन्धु गुप्तः (देहली) तब फिर आपके इस स्कीम में सबको गुरुमुखी भी सीखनी लाजमी होगी।

पं. ठाकुरदास भार्गवः मैं अदब के साथ अर्ज करता हूं कि अगर आप किसी स्टेट के मेम्बर होंगे तो उसकी भाषा भी सीखनी जरूरी होगी। सवाल यह है कि क्या एक छोटी सी बात के लिये बड़े सवाल का फैसला रोका जा सकता है। अगर दिल्ली का कोई भी ठीक सोल्यूशन है वह यह है कि आप नई दिल्ली को तो दिल्ली से अलग करके जिस तरह से भी आप उसका प्रबन्ध करना चाहते हैं बनाइये। मगर बाकी दिल्ली को आप ईस्ट पंजाब में मिला दीजिये। मैं पहले भी कह चुका हूं कि हम नहीं चाहते कि हमारे देश के टुकड़े हों और वह

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

अलग-अलग सूबों में बांट दिया जाये। इससे हमारे देश में बहुत गड़बड़ी फैल जायेगी और हम अपनी आजादी को कायम नहीं रख सकेंगे। जहां तक इस सवाल के मसले को तय करने का सवाल है वहां सिर्फ एक ही सोल्यूशन हमारे सामने है और वह यह है कि दिल्ली के 353 गांवों को ईस्ट पंजाब में मिला दिया जाये। अगर आप यह नहीं चाहते हैं तो यह गवर्नमेंट के अख्तियार में है। मैं यह बात अपनी ओर से ही नहीं कह रहा हूं बल्कि जहां से आया हूं वहां के लोगों की राय कह रहा हूं। मैं उन लोगों से मिला हूं और उन लोगों की जो राय है वह आपके सामने रख रहा हूं। मैं श्री देशबन्धु से कहूंगा कि वह आंखें केनोटप्लेस व गवर्नमेंट हाउस पर न रखें बल्कि सारे दिल्ली के सूबे के असली इन्टेरेस्ट को देखें।

लेकिन अगर गनर्नमेंट की राय यह है कि दफा 67 के अन्दर जो हकूक दिये गये हैं उससे कहीं ज्यादा रिप्रेजेंटेशन दिल्ली वालों को दे दें तो अच्छा है। अगर दिल्ली के लिये लेजिस्लेचर रखा गया जिसमें चन्द अख्तियारात दिये जायें तो उसके लिए मेरी राय है कि उसको वही अख्तियारात दिये जायें जो कि सेन्ट्रल एडमिनिस्ट्रर्ड एरिया वाले दूसरे इलाकों को दिये गये हैं। उसको और दूसरे ऐसे सूबों को ज्यादा रिप्रेजेन्टेशन दिया जाये। यह निहायत वाजिब तजवीज होगी। मैं अदब के साथ अर्ज करना चाहता हूं कि इस समय दिल्ली की आबादी करीब 20 लाख के है। 5 लाख तो यहां पर शरणार्थी हैं और 10 और 15 लाख यहां पर और लोग हैं जो हरियाना प्रान्त के ही हिस्से में से हैं।

देहली की पापुलेशन सारी हरियाने की पापुलेशन है, इसमें कोई फर्क नहीं है। दिल्ली की पापुलेशन में सब पंजाब के रहने वाले लोगों का मिक्सचर है और सब एक चूं चूं का मुरब्बा बना हुआ है। मैं तो देशबन्धु जी को, जैसे उन्होंने रिफ्यूजीज को वेलकम किया, भाई समझता हूं। पंजाब के पिछड़े हुये लोग यहां आये और उन्होंने उनको यहां रखा। मैं तो यह अर्ज करूंगा कि दिल्ली वाले चाहे पंजाब के साथ रहें या अलग रहें लेकिन उनका उतना ही हक है जितना कि और सूबों के रहने वालों का है कि वह सेन्ट्रल एडमिनिस्ट्रेशन में पूरे अख्तियारात पावें। सेण्ट्रल एडमिनिस्ट्रेशन में हमारा फर्ज है कि उनको वही हक दें जो और सूबे वालों को मिले हैं चाहे वह पंथ पिपलौदा के हों चाहे और कहीं के हों। जो आजादी उन्होंने सारे देश के वास्ते हासिल की है तो जहां तक हो सके लेजिस्लेचर में उनके पूरे से पूरे अख्तियारात सेण्ट्रल एडमिनिस्ट्रेशन को डीसेण्ट्रेलाइज करके दिये जायें जिससे उनके जो जायज एस्पिरेशन्स हैं जो पूरे हो सकें।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): माननीय मित्र श्री देशबन्धु गुप्ता ने कल यहां जो कुछ कहा था श्रीमान्, उसके अधिकांश से मैं सहमत हूं। मैं समझता हूं कि इस महिमा शालिनी सभा के लिए यह कभी उचित न होगा कि गुलामी के इन छोटे-छोटे भूभागों को वह उसी तरह सर्वथा स्वातन्त्र्यशून्य बना रहने दे जैसे कि ये पहले थे। अब जब देश को स्वराज्य मिल गया है और प्रत्येक प्रान्त को स्वशासन का अधिकार मिल गया है तो देश के इन छोटे-छोटे भागों को अभी भी अधिकतर मुल्की अफसरों के शासनाधीन रखना क्या एक दयनीय

बात न होगी? मैं इस बात पर विश्वास नहीं करता कि केन्द्रीय सरकार का कोई भी मंत्री स्थानीय प्रशासन की विस्तार की बातों को ध्यान से देख सकेगा। ये लोग तो केन्द्रीय काम में ही सदा व्यस्त रहेंगे। इसलिये मेरा कहना यह है कि जब तक आप इन भूभागों को केन्द्रीय सरकार के प्रशासन में रखेंगे यहां के निवासियों को कभी भी राजनैतिक अधिकार न प्राप्त हो सकेंगे और स्वराज्य से वह वंचित ही रह जायेंगे। मैं नहीं समझता कि पण्डित नेहरू की इस दलील में, कि चूंकि समूची नई दिल्ली भारत सरकार की सम्पत्ति है इसके लिये कोई स्वतंत्र पृथक शासन व्यवस्था रखना आवश्यक नहीं है, कुछ भी तर्क है। आपकी इस दलील को समझने में मैं सर्वथा असमर्थ हूं। अगर दिल्ली को लंदन या न्यूयार्क की तरह रखना चाहते हैं तो वैसा आप कर सकते हैं। यह बात तो मेरी समझ में आ सकती है। पर लंदन में भी स्थानीय प्राधिकारी हैं और वहां के प्रशासन में जनता का हाथ रहता है पर दिल्ली के साथ तो यह बात नहीं है। इसके प्रशासन में यहां के निवासियों की कोई भी आवाज नहीं है। बजाय इसके कि इन छोटे-छोटे भू-भागों को आप लेफ्टिनेण्ट गवर्नर वाले प्रान्त या चीफ कमिश्नर वाले राज्यों के रूप में रखें, बेहतर यह होगा कि आप इन्हें पड़ौस के राज्यों में मिला दें। कुर्ग को इसके पड़ौसी राज्य में मिलाया जा सकता है। विवादग्रस्त होने के कारण अगर आप इस प्रश्न पर निर्णय नहीं करना चाहते हैं तो मैं पूछता हूं आप निर्णय ही फिर किस बात का करेंगे? यह ऐसा विषय है जिसका फैसला इस गौरवान्वित सभा को ही करना चाहिये क्योंकि संसद् या विधानसभा को यह सम्मान और प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त हो सकती है जो कि इस संविधान-सभा को प्राप्त है। संसद् के निर्णयों में, तो प्राय: एक दल विशेष का ही हाथ रहता है। संसद् के निर्णयों को वही बल एवं प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त हो सकती है जो इस सर्वदलीय महतीसभा के निर्णयों को प्राप्त हो सकती है क्योंकि संसद् में वही निर्णय होता है जिसे वहां का बहुमत प्राप्त दल तय करता है। वहां एक दल का प्राधान्य रहता है जिसका वहां एक नेता होता है, एक ह्विप होता है। आज भी अगर मुझे संसद् में बैठना हो तो वहां मैं अपने मताधिकार का प्रयोग उस स्वच्छन्दता से नहीं कर सकता जिससे कि यहां कर सकता हूं क्योंकि यहां संविधान-सभा में तो पार्टी के निर्णय की अवहेलना की जा सकती है। इस संविधान-सभा में तो पार्टी के जो सदस्य हैं वह तो केवल पार्टी की सुविधा-प्रदान करने के लिए हैं ताकि किसी निर्णय पर पहुंचने में पार्टी को उनसे मदद और सुविधा मिल सके। पार्टी के ह्विप द्वारा निकाले गये आदेशों को मैं ऐसा नहीं समझता कि मानना ही होगा और जब तक इस बात का विश्वास नहीं हो जाता कि उसका आदेश सही है मैं उसे नहीं मानता। इस संविधान-सभा में पार्टी की आवाज को उतना महत्व नहीं प्राप्त है जितना कि व्यक्ति की आवाज को क्योंकि यहां प्रत्येक व्यक्ति समस्त राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है और समूचे राष्ट्र के हित के लिए जो ठीक समझता है वहीं कहता है। किन्तु संसद् में यह बात नहीं होती। वहां सदस्यों को पार्टी के आदेशों को मानना ही होगा और इसलिये संसद् का जो निर्णय होता है वह बहुमत प्राप्त दल का ही निर्णय होता है; इसलिये संसद के निर्णयों को वह प्रतिष्ठा और महिमा नहीं प्राप्त रहती है जो संविधान-सभा के निर्णयों को प्राप्त होती है।

सवाल यहां यह है कि इन छोटे-छोटे प्रदेशों के निवासियों को राजनैतिक अधिकार दिये जायें। यह उनका दुर्भाग्य ही था कि अतीत में उनको कोई प्रतिनिधान

[श्री महावीर त्यागी]

नहीं प्राप्त था और वहां की शासन व्यवस्था में उनका कोई दखल न था। किन्तु अब भी, जबकि देश को स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई है उनको आप प्रतिनिधान का अधिकार नहीं दे रहे हैं। उनके एक या दो प्रतिनिधि संसद् में आकर आखिर यहां क्या असर पैदा कर सकेंगे? एक संशोधन भी इस आशय का यहां आया था कि इन छोटे-छोटे प्रदेशों को और अधिक प्रतिनिधान देने की बात पर विचार किया जाये। यदि उनके दस प्रतिनिधि भी आप यहां संसद् में ले लेंगे तो वह वहां के शासन की रोजमर्रा की बातों में वह असर नहीं पैदा कर सकते हैं जो हम अपने-अपने प्रान्तों में कर पाते हैं। उनका संविधान किस तरह का हो और उसका नाम क्या हो इसकी मुझे कोई फिक्र नहीं है। अगर अपनी भावी व्यवस्था के अधीन उन्हें अपने प्रदेश के सम्बन्ध में स्वायत-शासन का अधिकार प्राप्त हो जाता है और स्थानीय प्रशासन में उनको पर्याप्त प्रतिनिधित्व दे दिया जाता है तो उससे ही हम लोगों को सन्तोष हो जायेगा। यदि आप उनके लिए उतना नहीं करते हैं तो मैं कहूंगा कि इन छोटे-छोटे प्रदेशों के प्रति हम न्याय नहीं कर रहे हैं। जहां तक दिल्ली का सम्बन्ध है, इसकी वही स्थिति है जो महाभारत की द्रौपदी की थी। चूंकि केन्द्रीय सरकार ने इसे अपने अधीन कर लिया है, इस बिना पर आप इसके साथ अन्याय न कीजिये। माननीय सदस्यों से मैं अपील करूंगा कि दिल्ली के प्रश्न पर वह ईमानदारी के साथ औचित्य के साथ विचार करें। दिल्ली ने बड़ी कुर्बानियां की हैं। दिल्ली के प्रश्न पर तो आप नये सिरे से विचार करें और अन्य छोटे-छोटे केन्द्र प्रशासित भूभागों को उनके पड़ौस के राज्यों में मिला दें। दिल्ली के सम्बन्ध में मेरी यह मांग रही है कि उसे संयुक्तप्राप्त में मिलाना चाहिये। पर अगर उपरोक्त बात मान ली जाती है तो मैं इस मांग को छोड़ दूंगा। दिल्ली को पंजाब के साथ मिल जाने दीजिये। प्राकृतिक दृष्टि से दिल्ली पंजाब का ही भाग है। इसकी वर्तमान सभ्यता पंजाब की है और इसमें पूर्वी एवं पश्चिमी पंजाब दोनों की सभ्यताओं का सम्मिश्रण है। पश्चिमी पंजाब से बहुसंख्यक नर-नारी अब दिल्ली आ गये हैं। इसलिये यह अब उनका हो गया है। पंजाब सरकार के अधीन वह ज्यादा सुखी होंगे और वहां के मंत्रियों को पुनः अपना दोस्त बना लेंगे। इसलिये दिल्ली को अपने परिवारी प्रदेश के साथ मिल जाने दीजिये। दिल्ली अब उनको जो लोग यहां आकर पुनः बस गये हैं। इस सम्बन्ध में हमें यही फैसला करना चाहिये। यदि दिल्ली और कुर्ग के प्रश्न पर हम कोई निर्णय नहीं कर पाते हैं तो फिर संसद् इस पर कैसे निर्णय पर सकती है? ऐसे मामलों के फैसला करने का संसद् को हक नहीं है। इस प्रश्न का फैसला तो यह सभा ही कर सकती है। आखिर अपना अधिकार हम संसद् को क्यों सौंपे? अगर श्री देशबन्धु गुप्त एवं अन्य मित्र इससे सहमत हों तो बजाय उसके कि इस प्रश्न का फैसला हम संसद् पर छोड़े हमीं यह फैसला कर दें कि दिल्ली को पंजाब में मिला दिया जाये और कुर्ग और अजमेर-मेरवाड़ा को उनके पड़ौसी राज्यों के साथ कर दिया जाये। ऐसा करने में पैसे की बचत भी होगी। मेरा तो यही प्रस्ताव है।

***श्री जयनारायण व्यास** (जोधपुर राज्य) क्या आप यह चाहते हैं कि नई दिल्ली भी पंजाब में मिला दी जाये?

***श्री महावीर त्यागी:** नई दिल्ली चाहे जहां जाये।

श्री मोहनलाल गौतम (यू.पी. : जनरल): सभापति महोदय, जो यह दिल्ली का प्रश्न है उस पर जरा गम्भीरता से विचार करने की जरूरत है। यहां कान्स्टीट्यूटएन्ट असेम्बली में कोई साहब ऐसे नहीं होंगे जो मुल्क के किसी हिस्से को कम अधिकार देना चाहते हों और दूसरे हिस्सों को ज्यादा अधिकार देना चाहते हो। इसलिये हम में से कोई भी नहीं चाहेगा कि किसी भी हिस्से में चीफ कमिश्नरशिप रहे। मुल्क के किसी भी हिस्से में चीफ कमिश्नर की हुकूमत का रहना वहां के लोगों के अधिकारों को कम करना है। इसलिये कहीं भी चीफ कमिश्नरशिप नहीं रहनी चाहिये। इससे हम सब एकमत हैं। जो चीफ कमिशनरशिप इस वक्त हैं वह एक के बाद दूसरी कहीं न कहीं मिला दी जावेंगी, इसमें मुझे कोई भी शक नहीं मालूम होता। लेकिन दिल्ली का और खास कर नयी दिल्ली का सवाल कुछ मुखतलिफ है। इसलिये मेरी पहली प्रार्थना तो यह है कि दिल्ली के सवाल पर जब हम विचार करें उस वक्त दिल्ली के गांव और नयी दिल्ली के शहर को बिल्कुल अलग कर देना चाहिये।

इसमें दो रायें नहीं हो सकती कि नयी दिल्ली को, जहां कि तीन चौथाई प्रापर्टी गवर्नमेंट आफ इण्डिया की है जहां कि फारेन एम्बेसीज की जगहें हैं, जो कि गवर्नमेंट आफ इंडिया की सीट है, वह किसी भी छोटे से लेफ्टिनेंट गवर्नर के प्राविंस को दी जाये। यह कम से कम मैं नहीं चाहता। इसलिये जब आप इस सवाल पर गौर करें तो नयी दिल्ली को अलग कर दीजिये। उसके बाद इस सवाल पर गौर करने में आसानी होगी। इसलिये मेरी राय यह है कि नयी दिल्ली को बिल्कुल अलग करके उसके गवर्नमेंट आफ इंडिया के एडमिनिस्ट्रेशन में देना चाहिये, उसमें किसी का कोई दखल न होना चाहिये।

अब सवाल रह जाता है बाकी हिस्से है। बाकी हिस्से को अगर आप अच्छी तरह डेवलप करना चाहें तो क्या आपका ख्याल है कि लेफ्टिनेण्ट गवर्नर का प्राविंस काफी होगा, उन लोगों को उतने अधिकार देने के लिए जितने कि दूसरे गवर्नर के प्राविंस वालों को अधिकार हैं? जब लेफ्टिनेंट गवर्नर की हुकूमत हो या आधे अधिकार गवर्नमेंट आफ इंडिया के हों और आधे हाउस के लोगों के हाथ में हों तो इस तरह की हुकुमत में जनता के लोगों को उतने अधिकार नहीं होगें जो कि बराबर के सूबे यू.पी. और पंजाब के लोगों के होंगे।

दूसरा सवाल सोचने का यह है कि क्या 200, 300 गांव और एक छोटा सा शहर एक लेफ्टिनेंट गवर्नर के तमाम अखराजात को बरदाश्त करने के लिए काफी है? यह हरगिज काफी नहीं है। इसलिये यहां की हुकूमत अच्छी तरह नहीं चल सकती। इतनी सी छोटी यूनिट को लेकर आप अच्छी तरह नहीं चला सकते। इस तरह यह छोटा सा यूनिट अलग नहीं रह सकता। तो अब सवाल यह है कि इसको बराबर के सूबे में जरूर मिला देना चाहिये। जहां तक यू.पी. का ताल्लुक है देशबन्धु जी ने यू.पी. की इम्पीरियलिज्म का जिक्र किया था कि वह एक हिस्से के बाद दूसरे हिस्से को जीतता चला जाता है। मैं उनको साफ बतलाना चाहता हूं कि यू.पी. की कोई ख्वाहिश नहीं है कि कोई हिस्सा उनके साथ मिले। अगर तीन रियासतें छोटी-छोटी मिली हैं तो इस वजह से कि वह कहीं और नहीं मिल सकती थीं। वह यू.पी. के अन्दर तीन आइलैण्ड हैं। जब धौलपुर और भरतपुर का सवाल आया था तो हमारी प्राविंशियल कांग्रेस कमेटी के प्रेसीडेण्ट ने साफ

[श्री मोहनलाल गौतम]

कहा था कि तुम्हें राजस्थान के साथ जाना चाहिये। इसलिये यू.पी. तो उस वक्त गौर कर सकता है जबकि कोई मर्ज लाइलाज हो। जब कोई डॉक्टर इसका इलाज नहीं कर सकता तब यू.पी. इसका इलाज कर सकता है। उसके पहले यू.पी. गौर करने के लिए तैयार नहीं है। इसलिये यू.पी. का सवाल आप छोड़ दीजिये। अगर इम्पीरियलिज्म के मामले को देशबन्धु जी दूर रखें तो अच्छा है। हमारा यू.पी. कोई इम्पीरियलिज्म नहीं लादना चाहता।

अब सवाल नयी दिल्ली को छोड़कर बाकी हिस्से का है और दूसरा सूबा रह जाता है पंजाब। पंडित ठाकुरदास जी भार्गव ने तमाम तवारीखी और तमाम जजबाती दलीलें दीं कि मेण्टल और हिस्टारिकल प्वाइण्ट आफ व्यू से दिल्ली को ईस्ट पंजाब के हरियाने से मिल जाना चाहिये। लेकिन मेरी दलीलें कुछ उससे अलग भी हैं। मैं यह कहता हूं कि ईस्ट पंजाब जो सबसे ज्यादा तबाह हुआ है, जो पिछले दो साल से अब तक रीहैबिलिटेट नहीं हो सका है उसको रीहैबिलिटेट करना है या नहीं। वह आपका फ्रण्टियर प्राविंस है। उसको हमें मजबूत करना है। अगर वह कमजोर रहेगा तो आपका सारा मुल्क कमजोर रहेगा। तो उसको रीहैबिलिटेंट करने के लिए क्या जरूरत है? सबसे पहले तो आप उसको एक केपिटल दीजिये, एक जगह दीजिये जहां उसकी हुकूमत बन सके, जो सीट आफ गवर्नमेंट बन सके। आज हालत यह है कि शिमला गवर्नमेंट आफ पंजाब का केपिटल है, मिनिस्टर जालंधर में रहते हैं, यूनिवर्सिटी अम्बाला में है और कालेज लुधियाना में है। इस तरह की हालत पंजाब में कब तक चल सकेगी? अगर आप उसको रीहैबिलटेट करना चाहते है तो पंजाब को एक केपिटल की सबसे पहले जरूरत है और अगर आप केपिटल नहीं दे सकते तो आप पंजाब की रीहैबिलिटेट नहीं कर सकते हैं और उसमें देर लगेगी और जितनी देर लगेगी उस वक्त तक तमाम यूनियन का डिफेंस कमजोर रहेगा। इसलिये सबसे पहली जरूरत यह है कि ईस्ट पंजाब की एक केपिटल हो जहां उसके मिनिस्टर्स रह सकें, जहां उसकी हुकूमत हो, जहां उसकी यूनिवर्सिटी हो, जहां उसकी तमाम चीजों का एक सेन्टर हो। पहले वह सेन्टर लाहौर में था और वह आपसे छिन गया और पंजाब में कोई और डवेलप्ड सिटी नहीं थी जहां वह अपना फौरन दूसरा कैपिटल बना लेता। अगर यू.पी. की यह हालत होती तो, यू.पी. की पोलिटिकल लाइफ एक केन्द्र में केन्द्रित नहीं है। लखनऊ है तो कानपुर भी, बनारस है तो इलाहाबाद भी है। अगर एक शहर उससे हट जाता तो दूसरे शहर में वह अपना केपिटल ट्रान्सफर कर सकता था। लेकिन पंजाब में यह बात नहीं थी। पंजाब में सारी पोलीटिकल लाइफ लाहौर में सेन्टर्ड थी। इसलिये लाहौर के छिन जाने के बाद वह तबाह हो गया है। इसलिये मेरी तजवीज है कि नयी दिल्ली को निकाल कर पुरानी दिल्ली, सिविल लाइन्स और जितने गांव में उन सबको ईस्ट पंजाब से मिला दिया जाये और उसके साथ-साथ उसका एक दूसरा जुज यह भी है कि उसका केपिटल यहां आ जाये। मैं यह इसलिये कह रहा हूं कि शायद देशबन्धु जी को यह पसन्द हो कि ईस्ट पंजाब को दिल्ली के साथ मिला दिया जाये। आप ईस्ट पंजाब को दिल्ली में मर्ज कर दीजिये और उसका कैपिटल सिविल लाइन्स दिल्ली में, जहां कि पुराना सेक्रेटरियट था, जहां पुराने गवर्नर-जनरल का मकान था जहां काफी

बिल्डिंग्ज आप इस वक्त दे सकते हैं वहां उसका केपिटल कर दिया जाये। और अगर यह केपिटल बन जाये तो मैं समझता हूं कि ईस्ट पंजाब का रीहैबिलिटेशन शुरू हो जायगा।

श्री देशबन्धु गुप्तः मेरी समझ में यू.पी., दिल्ली और पंजाब को एक साथ मिला दिया जाये?

श्री मोहनलाल गौतमः अगर देशबन्धु जी को यह पसन्द हो तो मुझे कोई ऐतराज नहीं है और लोगों को यह पसन्द हो तो मुझे इसमें कोई ऐतराज नहीं है। लेकिन शायद देशबन्धु जी ही इसको पसन्द नहीं करेंगे, इसलिये कि मैं इस नयी फर्म में उनको सीनियर पार्टनर बना रहा हूं। यू.पी. को भी मिला दिया जाये तो वह जूनियर पार्टनर हो जायेंगे जिसमें शायद वह ऐतराज करेंगे। इसलिये उनको अगर यह मंजूर हो तो मुझको कोई ऐतराज नहीं है। अगर मुल्क का हित इसमें है कि यू.पी. में मिला दिया जाये और अगर आप तैयार हों तो मैं इसके लिये तैयार हूं। इसलिये इसकी एक और वजह है। मैं जो यह कहना चाहता हूं कि दिल्ली पंजाब की राजधानी हो उसकी सबसे बड़ी वजह यह है कि जब पंजाब का बंटवारा हुआ तो लाहौर से जो लोग भाग कर आये वह सबके सब दिल्ली में ही आये। इस वक्त अगर ईस्ट पंजाब में कहीं भी लीडरशिप है, चाहे आप उसको तालीम के सिलसिले में देखें, चाहे आप इण्डस्ट्री में देखें चाहे बैंकिंग में देखें, किसी भी चीज में देख ले इस वक्त दिल्ली में मौजूद हैं। आपको ईस्ट पंजाब के दूसरे किसी हिस्से में जिस तरह का दिल्ली में है, नहीं मिलेगा। जितने भी बड़े-बड़े बैंक है वह सब दिल्ली में आ गये हैं और वह ईस्ट पंजाब में अपनी शाखा नहीं खोलना चाहते हैं। जितने भी बड़े-बड़े व्यापारी थे वह भी दिल्ली में ही आ गये हैं और यह अब इस शहर को छोड़ना नहीं चाहते हैं। अगर दिल्ली को ईस्ट पंजाब से हटा दिया जाये तो जो ईस्ट पंजाब की लीडरशिप है वह उससे महरूम रह जायेगा।

इसलिये मेरी राय यह है कि इस सवाल को पार्लियामेंट के लिये नहीं छोड़ना चाहिये बल्कि यहां पर इस सवाल को तय कर लेना चाहिये। नई दिल्ली के हिस्से को बिल्कुल अलग करके बाकी हिस्से को ईस्ट पंजाब में मिला देना चाहिये और दिल्ली को ईस्ट पंजाब की राजधानी बना देना चाहिये।

चौधरी रणवीर सिंह (ईस्ट पंजाब : जनरल): सभापति जी, इस सवाल का हल पार्लियामेंट के ऊपर छोड़ने से कोई फायदा नहीं रहेगा। अगर यह फैसला कर दिया जाये कि दिल्ली का फैसला क्या होगा, पुरानी दिल्ली और इसके देहात को पंजाब के अन्दर मिला दिया जाये और हिमाचल प्रदेश को भी पंजाब के अन्दर मिला दिया जाये और दूसरे छोटे-छोटे जितने इलाके हैं उनके बारे में भी कान्स्टीट्यूएंट असेम्बली फैसला कर दे तो मैं यह समझता हूं कि आसानी से, जो सेण्ट्रल एडमिनिस्ट्रेटिव एरिया हैं, उनका कान्स्टीट्यूशन बनाया जा सकता है और इस सवाल को पार्लियामेंट पर छोड़ने के लिए कोई जरूरत नहीं है।

गुप्ता जी जिस ध्येय के लिये लड़ रहे हैं वह हमारा भी था उसकी प्राप्ति के लिये वे हमारे नेता हैं। हम चाहते हैं कि दिल्ली का एक अलग सूबा बने। लेकिन आज हालत दरअसल यह है कि दिल्ली का अलग सूबा बन नहीं सकता है। मैं तो गुप्ता जी से यह प्रार्थना करता हूं कि जिस तरह से वह आज तक इस आशा में बैठे रहे कि एक दिन आयेगा जब उनकी मांग पूरी होगी वह कुछ

[चौधरी रणवीर सिंह]

दिन और अपने स्वप्नों को पूरा करने में ठहर जायें तो वह अभिलाषा अवश्य पूरी हो जायेगी।

यू.पी. एक बहुत बड़ा प्रान्त है और मेरा तो यह ख्याल है कि इतने बड़े प्रान्त का राज्य वह आसानी से नहीं चला सकेगा। एक न एक दिन उनको उसका दो हिस्सा करना ही होगा। और अगर ऐसा हुआ तो वह हमारे साथ अवश्य जोड़ा जायेगा। आगे चलकर यदि पंजाब के सूबे के भी दो हिस्सा हुए तो जो हिन्दी बोलने वाला हिस्सा है वह हिस्सा यू.पी. वाले हिस्से में मिल जायेगा। तो इस तरह से एक पंजाबी बोलने वाला हिस्सा हो जायेगा और एक हिन्दी बोलने वाला हिस्सा हो जायगा। गुप्ता जी ने जिस तरह से कल मांग की है वह मांग और उनका वह स्वप्न इस तरह से ही पूरा हो सकता है। अगर गुप्ता जी ने यह मेरा सुझाव न माना और चाहा कि उनका स्वाधीन अलग सूबा बन जाये तो उनका यह स्वप्न धरा का धरा रह जायेगा। अगर उनकी यह बात चली तो हम हिन्दी बोलने वाले पंजाब के अन्दर एक माइनौरटी में ही रह जायेंगे।

इसलिये मैं समझता हूं कि गुप्ता जी का जो ख्याल है उसको पूरा करने के लिए गुप्ता जी को यह मांग करनी चाहिये कि दिल्ली का जो रूरल एरिया और पुराना दिल्ली शहर है इसको पंजाब में मिला दिया जाये और ऐसा होने के बाद गुप्ता जी को अपने स्वप्नों को पूरा करने के लिए, अपने अखबार के जरिये अपनी आवाज को उठाना चाहिये। मुझे पूरी आशा है कि वह इस काम को अपने हाथ में लेंगे और कामयाबी का मुंह देखेंगे।

दूसरी बात जो गुप्ता जी ने कही है और जिसको मैं दोहराना नहीं चाहता वह यह है कि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि दिल्ली का सारा सडमिनिस्ट्रेशन पंजाब से ही आता रहा है। दिल्ली ने सिविल और एक्जिक्यूटिव सर्विसेज तो हमेशा से ही पंजाब से उधार ली हैं। आज भी दिल्ली का जो हाईकोर्ट है वह भी पंजाब ही में है। और यहां से लोगों को अपना काम कराने के लिए शिमला जाना पड़ता है। इस चीज की हमको भी तकलीफ है। परन्तु हाईकोर्ट को दूसरी जगह रखा गया तो दूसरे दूर वाले जिलों को तकलीफ हो जायेगी।

एक और चीज कल गुप्ता जी ने कही है वह और मैं उसके लिये उनको चैलेन्ज करना चाहता हूं। नई दिल्ली को छोड़कर दिल्ली के लोगों से अगर पूछा जाय तो मैं यह दावा करता कि वहां के 60 और 70 प्रतिशत आदमी इस बात के हक में जरूर होंगे और मुझे तो यह भी उम्मीद है और मुझे यकीन है कि शायद 80 और 90 प्रतिशत लोग ऐसे निकलेंगे जो यह चाहेंगे कि उनको ईस्ट पंजाब के साथ मिला दिया जाये। रूरल एरिया के बारे में, मैं पुख्ता तौर से यह कह सकता हूं कि वह लोग दिल्ली के देहात को रोहतक, गुड़गांव और करनाल से मिलाना पसन्द करेंगे और इस बात में जरा भी शक नहीं कि देहात में कम से कम ऐसे 11 प्रतिशत हैं। लेकिन जहां तक दिल्ली वालों का सवाल है कल ही एक कांफ्रेंस पं. ठाकुरदास भार्गव की प्रधानता में हुई और उसमें खास तौर से यह मांग की गई कि दिल्ली को अनाज के राशन के लिये कम से कम पंजाब के अन्दर मिला दिया जाये। मैं भी उस कांफ्रेंस में गया था वहां पर भी

मैंने यह मांग की थी कि हरियाना का प्रान्त और दिल्ली एक कर दिया जाये। अगर यह किसी तरह से नहीं किया जा सकता है तो वह उसको पंजाब में मिलाने के लिए पूरी मांग करते हैं।

देहात का जहां तक वास्ता है, मैं देहात के बारे में दावे से यह कहता हूं कि 99 प्रतिशत देहात इस बात को पसन्द करेंगें कि वह दिल्ली से मिल जायें।

मैं हाउस का ज्यादा समय न लेते हुये आखिर में यह अर्ज करना चाहता हूं कि अगर दिल्ली का प्रश्न हल हो जाये तो यह जो हम समझते हैं कि इसे पार्लियामेंट के ऊपर छोड़ दिया जाये, उसको पार्लियामेंट पर छोड़ने की आवश्यकता नहीं रहेगी क्योंकि नई दिल्ली का जहां तक वास्ता है वह तो अलग ही उससे रहेगा। उसके लिए रास्ता खुल जायेगा और जो हिचकिचाहट है वह नहीं रहेगी। पांडीचेरी के बारे में जैसा भी हम कान्स्टीट्यूशन बनाना चाहते हैं वह बना सकते हैं। इस प्रश्न को हमें बहुत ज्यादा होल्ड ओवर करने की भी आवश्यकता नहीं है। मेरा ख्याल है कि आठ दस दिन के अन्दर जब तक इस असेम्बली के चलने की उम्मीद है, इसका फैसला हो सकता है और मैं भी गुप्ता जी के इस कथन का समर्थन करता हूं कि इस प्रश्न का हल जो हो वह कान्सटीट्युएंट असेम्बली ही करे तो ज्यादा अच्छा है।

मौलवी हफीज उल रहमान (यू.पी.: मुस्लिम): सदर साहब, जनाब वाला, सूबा देहली के मुताल्लिक डॉक्टर अम्बेडकर का अमेंडमेंट बहुत ज्यादा काबिले गौर है। इस वक्त तक जो तकारीर हाउस में हुई हैं उनसे मैं और भी ज्यादा इसकी अहमियत को महसूस करता हूं।

देहली वह बदनसीब सूबा है जो आजादी हासिल करने से पहले भी और आज भी डेमोक्रेसी और जमहूरित के उन उसूलों से महरूम है जो उसको मिलने चाहिये थे। और आज मुल्क के आजाद होने के बाद तो एक मिनट के लिए भी हम इस बदकिस्मती और बदनसीबी को तस्लीम करने के लिए तैयार नहीं हैं। इसलिये मैं समझता हूं कि देहली अपनी तवारीख और ऐतिहासिक हैसियत से और दूसरी पोलिटिकल हैसियत से भी इस बात की मुश्तहक है कि इसको मुस्तकिल सूबा बनाया जाये। इसके बारे में जो दिक्कतें बयान की जाती हैं मैं उन दिक्कतों को कुछ ज्यादा अहमियत नहीं देता। बार-बार इस वक्त देहली की तवारीख को दुहराते हुये मिस्टर भार्गव ने और गौतम साहब ने भी इसको पंजाब में शामिल करने के लिए तकरीरें फरमाई। मैं नहीं समझता कि वह कौन सी तवारीख हैं जिसके ऐतबार से देहली को पंजाब का जुज्व कभी समझा गया है। हरियाना को देहली प्राविंस का एक जुज्व ख्याल किया जाता है लेकिन पंजाब की तवारीख में देहली को कभी भी इसका जुज्व नहीं समझा जाता था। मैं तो यह समझता हूं कि देहली अपनी तवारीख में एक मुस्तकिल हैसियत रखती है और आज भी इसकी हैसियत बुलन्द है। यह सवाल छोटे-छोटे सूबे बनाने का नहीं है और यह भी बात नहीं है कि देहली की हैसियत अजमेर-मेरवाड़ा जैसी ही है। जहां तक अजमेर-मेरवाड़ा का ताल्लुक है और वहां तक कुर्म का ताल्लुक है वह बिल्कुल एक जुदा हैसियत रखते हैं। देहली मर्दुमशुमारी की हैसियत से और अपनी अहमियत के ऐतबार से भी इन सूबों से जुदा है जो आज चीफ

[मौलवी हफीज उल रहमान]

कमिश्नर के सूबे बने हुये हैं। और देहली का चीफ कमिश्नर का सूबा बने रहना नाकाबिले बर्दास्त चीज है।

एडवाइजरी कमेटी का जो भी हमें अन्दाजा है वह खिलौने और तमाशे से ज्यादा अहमियत नहीं रखता है लेकिन इसके यह माने नहीं हैं कि जहां देहली को एक आजाद सूबा बनाने का सवाल है, बहुत खुबसूरत अलफ़ाज में कह दिया जाये कि देहली को नहीं बल्कि ईस्ट पंजाब को देहली में ज़ज़्ब कर दिया जाये। और इसको इसका एक जुज़ समझा जाये। इसलिये कि इन खूबसूरत अलफ़ाज से मसला की हकीकत नहीं बदल जाती है।

जनाब वाला मैं यह गुजारिश करूंगा कि देहली की यह अहमियत है कि ईस्ट पंजाब इस बात की कोशिश कर रहा है कि देहली हमारा कैपिटल बन जाये और वह ईस्ट पंजाब में मर्ज हो जाये यू.पी. का यह कहना कि वह उसके लिये तैयार नहीं है। इस इन्कार में भी इकरार का पहलू नजर आता है और उनके दलीलों से भी यह महसूस होता है कि देहली को एक सूबे की पोजीशन मिलनी चाहिये। इस ऐतबार से मैं यह गुजारिश करूंगा कि देहली ही की यह खसूसियत है कि उसमें और गुंजाइश है कि आज उसने लाहौर और वेस्ट पंजाब के रिफ्यूजिज को अपने अन्दर जगह दी और वह यू.पी. के मुसीबतजदा लोगों को भी अपने अन्दर समा लेता है।

यह देहली की तवारीख है कि वह हिन्द यूनियन के दो प्राविंसेज को अपने अन्दर ज़ज़्ब करती है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि देहली पंजाब का जुज़ है या यू.पी. का जुज़ है। देहली दूसरे प्रोविंसेज़ की तरह अपनी मुस्तकिल हैसियत रखती है। जहां तक मैं समझता हूं हर एक यही चाहता है कि देहली को अलग कर दिया जाये और उसको मुख्तलिफ सूबों का जुज़ न कहा जाये।

हमारे प्राइम मिनिस्टर साहब बहादुर ने जो स्टेटमेंट कल दिया है वह एक हद तक तसल्लीबख्श है। लेकिन मैं यह जरूरी नहीं समझता हूं कि नई देहली को पुरानी देहली से जुदाकर दिया जाय। देहली की अपनी हिस्ट्री है और हम भी कैपिटल होने की हैसियत से उसकी मुश्किलात को समझते हैं। मैं यह नहीं कहता कि मुश्किलात को अबूर करने के लिए कुछ तहफ्फुजात न हों। मैं यह कहता हूं कि आप यहां तहफ्फुजात का भी इन्तजाम रखें। लेकिन नई देहली और पुरानी देहली को जिसमें केवल दो सौ या तीन सौ गांव हैं, एक पूरे प्राविंस की हैसियत में होना चाहिये और एक आजाद प्राविंस होना चाहिये। इसको वही हक मिलने चाहियें जो कि दूसरे सूबों को मिले हैं।

जहां तक कि लीडरशिप का ताल्लुक है यह कहना कि देहली में ईस्ट पंजाब के बड़े काबिल लीडर मौजूद हैं, कोई खास दलील नहीं है। मैं यह कहूंगा कि देहली में एक पंजाब क्या यहां तो हिन्द यूनियन के तमाम सूबों के लीडर मौजूद हैं।

और यहां पर तमाम लीडरशिप जमा होती है। अगर पंजाब के लीडर यहां पर रहते हैं तो उसका मतलब यह नहीं है कि देहली को पंजाब का कैपिटल बनाया जायेगा। देहली की खूद् अपनी तवारीख है और उसके खिलाफ कुछ नहीं कहा जा सकता है। आप वाशिंगटन की मिशाल को ही लीजिये। अगर वह एक राजधानी है फिर भी वह हर एक ऐसी आजादी रखता है जो कि उस मुल्क की दीगर जगहों में है और अगर वाशिंगटन में ऐसी सूरत न हो तब भी दूसरे ऐसे मुमालिक मौजूद हैं जिनके कैपिटल आज़ाद सूबों की हैसियत रखते हैं। देहली भी इसी को अख्तियार करना चाहती है और एक एडवाइज़री कमेटी के मातहत नहीं रहना चाहती है। वह मौजूदा तरीका इन्तखाब को मंजूर नहीं कर सकती है। उसको भी इसी तरह से इन्तखाब का हक मिलना चाहिये जिस तरह से कि दूसरे सूबों को मिला है। उसको भी ऐसी ही आजादी मिलनी चाहिये जिस तरह कि दूसरे सूबों को मिली हुई है।

जिस तरह से कि पंजाब और यू.पी. को हर एक आजादी दी गई है और हाईकोर्ट दिया गया है उसी तरह से देहली को भी मिलना चाहिये। देहली को हर एक आजादी मिलनी चाहिये और डैमोक्रैमिटक राइट्स मिलने चाहियें। देहली को ईस्ट पंजाब और यू.पी. का एक जुज़ बताना बर्दास्त नहीं किया जा सकता है जैसा कि मैंने अर्ज़ किया है देहली की अपनी मुस्तकिल हैसियत है और देहली को वैसी ही आजादी मिलनी चाहिये जैसी कि दीगर सूबों को मिली है। यह जो कहा जाता है कि देहली ईस्ट पंजाब का एक जुज़ है और उसकी ईस्ट पंजाब में मर्ज किया जाना चाहिये, ठीक नहीं है। इसलिये मैं यह गुज़ारिश करूंगा कि देहली के बारे में इस मामले को यहां पर ही साफ करना चाहिये।

जो कुछ लाला देशबन्धु साहब ने कहा है वह उन्होंने एक नुमाइन्दा की हैसियत से कहा है, उनको देहली की नुमाइन्दगी हासिल है और उन्होंने जो कुछ भी कल कहा है वह देहली की तमाम पब्लिक की तरफ से कहा है वह देहली की जनता की आवाज है और देहली के तमाम बाशिन्दों की राय है। इसलिये मैं यह गुजारिश करूंगा कि यह जो बहस उठाई जा रही है, मुनासिब नहीं है और यह कहना चाहता हूं कि देहली के हालात को देख कर और देहली की तवारीख को देखकर और देहली की तमाम जनता की राय को देखकर आपको चाहिये कि आप देहली को एक आजाद सूबे की हैसियत दें और उसको जमहूरियत का पूरा-पूरा फायदा उठाने दें और उसको ईस्ट पंजाब का जुज़ तसव्वुर न करें और न उसको एक एडवाइजरी कमेटी के मातहत रखें। और इस बात का यहीं पर ही फैसला करें। जो स्पेशल कमेटी बनी थी उसमें इतफाक राय से यही फैसला हुआ है कि देहली को एक अलग सूबे की हैसियत दी जाये और उसको ऐसी ही आजादी दी जाये जैसीकि दूसरे सूबों को मिली हुई है। मेरी समझ में नहीं आता कि इस बात को क्यों नजरअंदाज किया गया है और ड्राफ्टिंग कमेटी ने भी इस बात को क्यों नजरअंदाज किया है। अगर आप अब भी इस स्पेशल कमेटी के फैसले पर अमल करना चाहते हैं तो अभी भी कुछ देर नहीं हुई है। सुबह का भूला हुआ अगर शाम को घर वापस आ जाये तो वह भूला हुआ नहीं कहलाता है।

अगर इस मामले को पार्लियामेंट में ले जाना हो तो उसको वहां ले जाकर फैसला करना चाहिये और इस मामले को साफ करना चाहिये और इसके मुताल्लिक एक खाका बनाना चाहिये जिसमें यह दर्ज हो कि किस किस्म की आजादी उसको मिलेगी। देहली के मामले में बहस करने के बारे में यह कहना कि उसमें किसी सख्श को अपनी मिनिस्ट्री की दिलचस्पी है एक ऐसी चीज है जो कि मेरे नुक्ते

[मौलवी हफीज उल रहमान]

ख्याल से बिल्कुल बेकार है। आजकल डैमोक्रेसी के जमाने में हर एक सूबा चाहे वह बड़ा हो या छोटा अपनी आजादी चाहता है और उसको हासिल करने के लिये कोशिश में रहता है। इसलिये अगर कोई अपनी आजादी चाहता हो तो उसको यह कहा जाये कि वह अपनी मिनिस्ट्री के लिए ऐसा करता है, यह बर्दाश्त नहीं किया जा सकता है। और अगर कोई ऐसे मामलों में दिलचस्पी लेता है तो उसका मतलब यह नहीं है कि वह मिनिस्ट्री का ख्वाह है। अगर ब्रिटिश राज्य में किसी को इस तरीके से बांधा गया हो और उसकी आजादी सेन्ट्रल गवर्नमेंट के हाथों में चली गई हो तो अब आजाद हिन्द में इस बात को बर्दाश्त नहीं किया जा सकता है और न ही यह कोई सचाई की बात है। आपको चाहिये कि इस बारे में एक खाका मर्तब करें और अगर जरूरी हो तो इस बात पर पार्लियामेंट में बहस करें। लेकिन मैं यह अर्ज़ करूंगा कि इस बात का हल यहां पर ही होना चाहिये और इस बात को नहीं भूलना चाहिये कि देहली ईस्ट पंजाब या यू.पी. का एक जुज़ नहीं है। मैं फिर भी आप से यह गुज़ारिश करूंगा कि देहली की अपनी तवारीख है और देहली अपनी मुस्तकिल हैसियत रखती है और उसकी आजादी उसको वापस मिलनी चाहिये। जो हक देहली का राजों और बादशाहों के वक्त से रुका हुआ है वह उसको वापस मिलना चाहिये, ऐसा करने से आप अपनी मौजूदा डैमोक्रेसी को बरकरार रख सकते हैं और जिस तरह से आजकल दूसरे सूबे मसलन पंजाब, यू.पी. और मद्रास अपनी पूरी आजादी हासिल किये हुये हैं और चीफ कमिशनर के हाथों में खिलौने की तरह नहीं हैं; इसी तरह से देहली को भी अपना हक मिलना चाहिये।

जहां तक सिविल सर्विस का ताल्लुक है आप जानते हैं कि उसमें दो हिस्से किये गये हैं, निस्व आदमी पंजाब से लिये जाते हैं और निस्व यू.पी. से। अगर यहां पर कैपिटल सिटी है तो ऐसा नहीं होना चाहिये और यहां पर मुख्तलिफ सिविल सर्विसेज से आदमी लेने चाहियें ताकि वह अपने एडमिनिस्ट्रेशन को चला सकें। अगर आप उस वक्त निस्व पंजाब और निस्व यू.पी. से लेते हैं तो क्या उसका मतलब यह है कि देहली के आदमी एडमिनिस्ट्रेशन को नहीं चला सकते हैं। अगर आप यह तस्लीम इसलिये करते हैं कि इन सूबेजात से जो आदमी लाये जाते हैं वह बेहतरीन खिदमात इन्ताज दे सकते हैं। तो इसका मतलब यह है कि पंजाब और यू.पी. के अलावा और कोई भी उसको नहीं कर सकता है, तो मैं अर्ज़ करूंगा कि देहली इस चीज़ को बर्दाश्त नहीं कर सकती है। इसलिये मैं यह गुजारिश करूंगा कि आप देहली को भी दूसरे सूबों की तरह एक अलग सूबा बनायें और इसको भी ऐसे ही हकूक दें जो कि दूसरे सूबों को हासिल हैं। देहली कम अज़ कम 300 गांवों पर मुशतमल है और दोनों नई और पुरानी देहली इसमें शामिल हैं, इसलिये आप इसको एक अलग सूबा बनाकर उसको पूरी आज़ादी दें।

***अध्यक्षः** बाबू रामनारायण सिंह।

***मि. तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम) : मेरा यह प्रस्ताव है, श्रीमान्, कि अब इस प्रश्न पर मत ले लिया जाये। इस पर हम काफी बहस कर चुके हैं।

***अध्यक्षः** पर एक माननीय सदस्य को बोलने के लिये मैं पुकार चुका हूं।

***श्री रामनारायण सिंह** (बिहार : जनरल): सभापति जी, भाई तजम्मुल हुसैन का कहना है कि रामनारायण सिंह को दिल्ली से क्या मतलब और दिल्ली के सम्बन्ध में वह क्या कहेंगे। बात यह है कि दिल्ली सारे भारतवर्ष की राजधानी है और यहां पर सारे देश के प्रतिनिधि आये हुए हैं। यदि दिल्ली के पैसे और अन्न नहीं तो कम से कम यहां की हवा और पानी तो हम लोग काम में लाते ही हैं। इसलिये सभी सभासदों का यह कर्त्तव्य है और धर्म है कि दिल्ली के लिये उनसे कोई विशेष कार्य न हो सके तो कम से कम यह तो करें कि दिल्ली के साथ न्याय अवश्य हो। और इसके साथ-साथ एक बात और यह है कि सारे भारत वर्ष की राजधानी होने से दिल्ली में सब जगह के लोग आते जाते रहते हैं। इसलिये हम यहां एक ऐसे शासन का बन्दोबस्त करें कि जिसका असर सारे हिन्दुस्तान में पहुंचे। इसलिये यह सबका काम है कि यहां के शासन के प्रबन्ध के लिए एक ऐसी सुन्दर व्यवस्था सोच विचार कर लावें कि जो देश में और दुनिया में एक नमूना हो जाये। मुझे यह सुनकर दु:ख मालूम होता है कि ईस्ट पंजाब के लोग आते हैं और कहते हैं कि दिल्ली पंजाब को मिले, यू.पी. के लोग कहते हैं कि नहीं यू.पी. को मिले। केन्द्रीय सरकार की तरफ से यह बात आती है कि नहीं दिल्ली को केन्द्रीय सरकार के अधीन रहना चाहिये। साहब यह तो मेरी समझ में नहीं आता कि यह दिल्ली की जमीन के बारे में बात है, यहां के ईंट पत्थर की बात है या कि दिल्ली के आदमियों की भी बात है। यदि हम न्याय करते हैं, यदि हम प्रजातन्त्र की बात करते हैं तो यह नहीं होना चाहिये कि पंजाब के लोगों के कहने के मुताबिक दिल्ली पंजाबियों को मिल जाये या यू.पी. के रहने वालों के कहने के मुताबिक यू.पी. को मिल जाये; यह भी नहीं होना चाहिये कि केन्द्रीय सरकार के अधीन रहे। अधीन रहना कैसी बात है? यहां तो स्वराज्य की बात है। हमें यह देखना चाहिये कि दिल्ली के लोग क्या चाहते हैं। हमें इस पर विचार करना है। यहां पर श्री देशबन्धु गुप्ता दिल्ली के प्रतिनिधि हैं। दिल्ली की आवाज उनके जरिये उठ सकती है। लेकिन यदि उनकी भी बात न मानी जाये तो हमें कोई उज्र नहीं है। दिल्ली में कोई सभा करके या प्लेबीसाइट करके दिल्ली वालों की राय लेकर दिल्ली का प्रबन्ध करना चाहिये। और यहां मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि किसी बड़े या किसी छोटे या किसी बड़ी जमात की राय से भी यह काम नहीं होना चाहिये। यह न्याय का तकाजा है कि दिल्ली वालों की राय से ही दिल्ली में पंचायती राज कायम होना चाहिये।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि इस प्रश्न पर अब मत लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** श्री बी. दास।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): प्रश्न क्या है इसे सभा ने शायद समझा ही नहीं श्रीमान्। इस तरह कई सदस्य यह कह रहे हैं कि उन्होंने सवाल को सुना ही नहीं।

***अध्यक्ष:** आप फिर से इसे पेश कर सकते हैं।

***श्री बी.दास** (उड़ीसा : जनरल): डॉ. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन का समर्थन तथा श्री देशबन्धु गुप्त और पण्डित ठाकुरदास भार्गव के संशोधन का विरोध करता हूं श्रीमान्। डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन मैं केवल सैद्धांतिक दृष्टिकोण से करता हूं किन्तु इस समय मैं यह स्वीकार नहीं कर सकता कि कौन-कौन से प्रान्त ऐसे होंगे जो केन्द्र प्रशासित रहेंगे। इसका फैसला यह सभा आगे चलकर करे। मुझे आश्चर्य है कि पण्डित ठाकुर दास और श्री देशबन्धु जैसे दक्ष वकील ने ऐसा संशोधन यहां उपस्थित किया है और वह यह चाहते हैं कि दिल्ली, अजमेर-मेरवाड़ा और पन्थ पिप्लोदा जैसे छोटे-छोटे प्रदेशों को राज्य परिषद् में और केन्द्रीय संसद में, संरक्षण के रूप में, विशेषाधिकार के रूप में सुरक्षित स्थान दिये जायें। उनकी यह मांग लोकतंत्रीय सिद्धान्तों के सर्वथा विपरीत है और पण्डित भार्गव जैसे व्यक्ति से तो इसकी आशा ही नहीं की जा सकती है।

अस्तु, अगर इस प्रश्न पर मुझे अपनी राय देनी हो कि कौन-कौन प्रदेश केन्द्र प्रशासनाधीन रखे जायें तो मेरी समझ से तो केवल अण्डमान और निकोबार द्वीपसमूह को ही, भारत की सुरक्षा के ख्याल से और इसलिये भी कि यहां पूर्वी बंगाल के लोगों को बसाया जा रहा है, केन्द्र प्रशासित प्रदेश के रूप में रखना ठीक है। दिल्ली, अजमेर-मेरवाड़ा और कुर्ग आदि प्रदेशों को तो विदेशी शासकों ने समय की गति के खिलाफ केन्द्र प्रशासनाधीन रखा था केवल इसलिये भारत में उनका शासन बना रहे और उनकी शान शौकत बनी रहे। मैं दिल्ली को आज तीस वर्षों से जानता हूं और पुरानी दिल्ली से मैं खूब परिचित हूं।

***श्री देशबन्धु गुप्त:** पुरानी दिल्ली को अब आप भूल गये हैं।

***श्री बी. दास:** उस समय तो आप दिल्ली में थे भी नहीं। नई दिल्ली एवं पुरानी दिल्ली में रहने वाले विदेशी शासकों को सम्मान देने के लिये, उनको पार्टी देने के लिए ही पुरानी दिल्ली की परवरिश की जाती थी। क्या माननीय मित्र यह चाहते हैं कि दिल्ली का सरकारी अफसरों के प्रति जो दास्यभाव था वह सदा के लिए बना रहे? दिल्ली को अलग प्रान्त बनाने की मांग आप क्यों करते हैं? संयुक्तप्रान्त का एक अंग है। यहां की सभ्यता, विचारधारा वही है जो लखनऊ या इलाहाबाद की है। इसे हरियाणा का प्रान्त का अंग न बनाना चाहिये। दिल्ली पर पूर्वी पंजाब ही क्यों अपना दावा पेश करे? दिल्ली की सभ्यता और संस्कृति उनकी सभ्यता एवं संस्कृति से कहां मिलती है? यहां की संस्कृति एवं सभ्यता तो वहीं संयुक्तप्रान्त की है।

***श्री देशबन्धु गुप्त:** यों कहिये कि संयुक्त प्रान्त की संस्कृति वही है जो दिल्ली की है।

***श्री बी. दास:** तब आप यू.पी. जाइये। कल शाम "इवनिंग न्यूज़" में राइट-एंगिल की इन पंक्तियों को पढ़कर मुझे बड़ी ही खुशी हुई थी:

> "नई दिल्ली, अब भी बढ़ती हुई गन्दी बस्तियों के प्रवाह से बचाई जा सकती है। यह घोषणा करते हुये कि नई दिल्ली सर्वथा केन्द्रीय सरकार के अधीन रहेगी, प्रधान मंत्री ने इसे बचाने का दृढ़ निश्चय कर लिया है।"

आगे चलकर वह कहता है:–

"चांदनी चौक के स्तर वाले म्युनिसिपल कमिश्नरों को इसके काम में दखल देने का मौका न दिया जायेगा। हां, यह भले ही हो कि उनमें से कोई साहब लेफ्टिनेंट गवर्नर के रूप में या कुछ लोग मंत्री नहीं तो सलाहकार के रूप में ही सही शान दिखाकर अपना शौक पूरा कर लें।"

अधिकारियों के अधीन यहां के म्युनिसिपल शासन का यही स्तर है जिसे मैं आज प्राय: 32 वर्षों से देखता आ रहा हूं और मैं इस बात का सदा लज्जाबोध करता रहा हूं कि दिल्ली की मनोदशा इस तरह दास्यपूर्ण है। मेरा विचार तो यही है कि पुरानी दिल्ली को नई दिल्ली से अलग करके उसे संयुक्तप्रान्त में मिला देना चाहिये।

पूर्वी पंजाब को चाहिये कि वह अपनी सभ्यता एवं परम्परा का निर्माण करे। ये लोग डरते हैं और व्यर्थ ही यह मांग कर रहे हैं। ये लोग सुचित्त होकर न अपना न्यायालय बना रहे हैं और न अपनी राजधानी के लिये एक नगरी का ही निर्माण कर रहे हैं। इनके मंत्री अपने प्रदेश से दूर सदा शिमला में विराजमान रहते हैं। क्यों नहीं वहां से उतरकर ये लोग चन्डीगढ़ में अपनी राजधानी बनाते हैं और क्यों नहीं ये लोग अपनी एक सभ्यता का और जीवनस्तर का निर्माण करते हैं? आखिर ये लोग इस बात की आशा तो नहीं कर सकते हैं कि दिल्ली उनको दे दी जायेगी ताकि बिना प्रयास उनको एक चीज यों ही बे मतलब मिल जायेगी। आज दो वर्ष बीत चुके पर इन लोगों ने अपनी राजधानी बनाने के लिए कोई भी प्रयास नहीं किया। इसके लिए इनकी तथा इनके मंत्रियों की मैं अवश्य ही निन्दा करूंगा।

जहां तक अजमेर-मेरवाड़ा का सम्बन्ध है, इसका सधारण तो इसलिये किया जाता था कि राजस्थान के शक्तिशाली राजाओं पर रोबताब बना रहे और वह डरते रहें। राजस्थानी रियासतों को एक संघ के रूप में रखने के निश्चय के साथ ही हम अजमेर-मेरवाड़ा और पन्थ पिपलोदा को राजस्थान संघ में मिला देना चाहिये था और अजमेर को हमेशा के लिये या आंशिक रूप में उसकी राजधानी बना देना था। पर ऐसा न करके हम वही पुरानी असामयिक व्यवस्था अभी भी चलने दे रहे हैं।

जहां तक कुर्ग का सम्बन्ध है, यहां के 40 हजार निवासी समस्त भारत पर शासन कर रहे हैं। मैसूर और कुर्ग के लोग मद्रास सरकार में भी ऊंचे से ऊंचे पदों पर हैं। हमारी सेना के अधिकांश जनरल हमें कुर्ग से मिलते हैं। सेना के सभी कैरियप्पा, थिम्माया और अन्य हाकिम हमें कुर्ग से ही मिलते हैं। चाय बगान के युरोपियन साहिबों के लिए कुर्ग को एक अलग युनिट (इकाई) के रूप में रखा गया था। किन्तु लोकतन्त्र की हामी यह सभा भी क्या उसी व्यवस्था को बनाये रखना चाहती है? कुर्ग को मैसूर में मिला देना चाहिये क्योंकि सांस्कृतिक एवं नैतिक दृष्टि से यह मैसूर का ही एक अंग है। समय आ गया है कि कुर्ग को आप मैसूर के साथ मिला दें।

हां, कुर्ग के बचाव में एक बात मैं जरूर कहूंगा। वह केन्द्र से कोई रकम दान में नहीं लेता है। दिल्ली-जिसकी आबादी 1936 में 6 लाख थी–पर कल

[श्री बी. दास]

श्री देशबन्धु गुप्ता ने बताया कि इसकी आबादी अब 20 लाख है क्योंकि सीमाप्रान्त, पश्चिमी और पूर्वी पंजाब के उजड़े हुये वे घरबार के लोग, अब यहां आकर रहने लगे हैं—केवल सात सौ गांव है और केन्द्र से प्रति वर्ष उसे डेढ़ करोड़ की आर्थिक सहायता प्राप्त होती है। हमें यहां की उस आबादी से कोई मतलब नहीं है जो बेघरबार होकर चन्द दिनों के लिए यहां आ गई है। माननीय मित्र देशबन्धु गुप्त मेरी इस बात से सहमत होंगे कि डेढ़ करोड़ की आर्थिक सहायता दिल्ली को केन्द्र से मिलता है इसमें यह रकम शामिल नहीं है जो सहायता के रूप में यहां के विभिन्न शरणार्थी शिविरों को दी जाती है। फिर इसके अलावा भी दिल्ली को सहायता के रूप में साढ़े तीन करोड़ रुपये एक मुश्त मिल चुके हैं। जब केन्द्र और किसी भी प्रदेश को कोई आर्थिक साहाय्य नहीं देता है तो दिल्ली को ही वह इतनी बड़ी रकमें मदद में क्यों देगा? और फिर बीस लाख की आबादी एक पृथक प्रान्त की मांग ही क्योंकर कर सकती है? दिल्ली के लोग अगर अपनी संस्कृति चाहते हैं तो उन्हें संयुक्त प्रान्त में मिल जाना चाहिये। उनके प्रतिनिधि लाला देशबन्धु गुप्त तो जन्मना पंजाबी हैं और शायद अब अलग अपना हरियाणा प्रान्त बनाना चाहते हैं। हरियाना की गायों की बाबत तो मैं सुन चुका था पर हरियाना प्रान्त की चर्चा मुझे पहली बार सुनाई पड़ी थी गोलमेज कांफ्रेंस के दौरान में जहां पंजाब के कई पुराने लोग यह चाहते थे कि संयुक्त प्रान्त के कुछ इलाकों को हरियाना प्रदेश में मिलाकर उसे एक अलग प्रान्त बना दिया जाये और पश्चिमी पंजाब से इस तरह उसे पृथक कर दिया जाये। पर अब तो दैवादुर्विपाक से जो देश का विभाजन हुआ है उससे यह समस्या स्वतः हल हो गई है। अब तो हरियाना प्रान्त बनाने का कोई सवाल ही नहीं रह गया है। सांस्कृतिक दृष्टि से दिल्ली संयुक्त प्रांत का अंग है। कल हमारे प्रधान मंत्री ने यहां एक वक्तव्य देकर सभा को तथा माननीय मित्र श्री देशबन्धु गुप्ता को इस बात का स्मरण दिलाया है कि अब कई परिवर्तन हो गये हैं। फिर दिल्ली को अलग एक लेफ्टिनेंट गवर्नर का प्रान्त बनाने की बात श्री गुप्त अब किस कारण के आधार पर कर रहे हैं? संरक्षित स्थानों की और विशेषाधिकारों की व्यवस्था को आपने अब समाप्त कर दिया है। फिर दिल्ली को पृथक प्रान्त बनाने की मांग क्यों?

***श्री देशबन्धु गुप्तः** इसलिये कि आप दिल्ली वालों को सामान्य अधिकारों से वंचित रख रहे हैं।

***श्री बी. दासः** नहीं ऐसी बात नहीं है। उनके पुराने शासकों ने जरूर उन्हें उनके अधिकारों से वंचित रखा था। आज तो प्रश्न यह है कि हम सबको बराबर अधिकार प्राप्त होने चाहियें। दिल्ली के लिये उचित यह होगा कि वह संयुक्तप्रान्त में मिल जाये। सवाल सिर्फ यह नहीं है कि डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का समर्थन किया जाये। इससे होता यह है कि कम आय वाले प्रदेशों को आर्थिक साहाय्य प्रदान के लिए यह सभा वचनबद्ध हो जाती है और केन्द्र प्रशासित प्रदेशों को हमें एक समुन्नत शासन स्तर पर रखना होगा। किन्तु जैसा मैंने पहले कहा है अब केवल अण्डमान और निकोबार द्वीपसमूह ही केन्द्र प्रशासित प्रदेश रह जायेंगे और संसद् के दोनों सदनों में उनका प्रतिनिधि रहेगा केन्द्रीय गृह मंत्री जिसके अधीन वह प्रदेश.....

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** (बिहार : जनरल): एक औचित्य प्रश्न है श्रीमान्। हम यहां संविधान के भाग सात पर विचार कर रहे हैं और न कि अण्डमान निकोबार द्वीपसमूह के सम्बन्ध में।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य वस्तुतः अण्डमान और निकोबार द्वीपसमूह के बारे में नहीं बोल रहे हैं बल्कि वह दिल्ली, अजमेर-मेरवाड़ा तथा अन्य प्रान्तों के सम्बन्ध में ही विचार व्यक्त कर रहे हैं।

***श्री बी. दासः** माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद यह देखेंगे कि एक साल के अन्दर, इन द्वीपसमूहों को छोड़कर जिनका कि मैंने यहां उल्लेख किया है और अन्य कोई भी ऐसा प्रदेश न रह जायेगा जो केन्द्र प्रशासित हो। इन केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों की संवैधानिक स्थिति पर हम यहां विचार कर रहे हैं और आशा है सभा बुद्धि से काम लेगी और अण्डमान तथा निकोबार द्वीपसमूहों को छोड़कर अन्य कोई केन्द्र प्रशासित प्रदेश यहां न रहने देगी।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, इस एक छोटे से प्रश्न ने यहां सभा में वस्तुतः एक तूफान खड़ा कर दिया है। हमें इस प्रश्न पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से विचार करना होगा। सभा के सामने दो परस्पर विरोधी सुझाव रखे गये हैं। एक सुझाव यह है कि दिल्ली को केन्द्र प्रशासन से हटाकर पंजाब में मिला देना चाहिये। उसके प्रतिकूल दूसरा सुझाव यह है कि पंजाब को ही दिल्ली में मिला दिया जाये। मेरा कहना यह है कि वस्तुतः दोनों ही बातें एक हैं और इसलिये इस पर ऐसा विवाद उठना ही नहीं चाहिये था। मैं समझता हूं कि यह दोनों ही सुझाव एक हैं। आप यह कहिये कि पति पत्नी से विवाह करे या कहिये पत्नी पति से विवाह करे, बात एक ही है। मेरी समझ से हमें इस प्रश्न को ज्यों का त्यों छोड़ देना चाहिये।

मेरा कहना यह है कि इस प्रश्न पर हमें व्यावहारिक दृष्टिकोण से विचार करना चाहिये। पुरानी या नई दिल्ली के पीछे हजारों वर्ष का इतिहास है। यह भारत सरकार की राजधानी है। यहां बहु-संख्यक राजदूतों और विदेशी प्रतिनिधियों के दफ्तर हैं। यहीं अपने लोकतंत्र के विधान-मण्डल की, संसद् के दोनों सदनों की बैठक हुआ करेगी और संसद् के सदस्य यहीं ठहरेंगे। इस दोनों नगरों को यानी नई और पुरानी दिल्ली को अगर किसी पड़ौसी प्रान्त के साथ कर दिया जाता है तो कठिनाई यह होगी कि केन्द्रीय सरकार को, यहां रहने वाले उच्च-पदस्थ विदेशीय तथा स्थानीय प्राधिकारियों को हर बात के लिय प्रान्तीय सरकार को कहना पड़ेगा जिसकी राजधानी अन्यत्र कहीं दूर होगी और इन लोगों के लिये यह एक बड़ी ही असुविधा की स्थिति रहेगी। इसलिये मेरा सुझाव यह है कि दिल्ली प्रान्त को तीन भागों में बांट दिया जाये। जमुना के पूर्ववर्ती गांवों को संयुक्त प्रान्त को दे दिया जाये। भौगोलिक दृष्टि से यह काम उत्तम होगा। उस हालत में दिल्ली की सीमा होगी यमुना जो एक प्राकृतिक सीमा होगी। जहां तक दिल्ली के आस-पास के अन्य गांवों का सम्बन्ध है उन्हें पूर्वी पंजाब में मिला देना चाहिये। किन्तु पुरानी और नई दिल्ली दोनों को मिलाकर एक नगर बना देना चाहिये जिसकी व्यवस्था एक कारपोरेशन करे। यत्र तत्र नगरपालिका निकायों के छोटे-छोटे घटक रखे जा सकते हैं पर

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

समूची दिल्ली कारपोरेशन के अधीन ही रहनी चाहिये। नई और पुरानी दिल्ली को प्रान्तीय क्षेत्र का अंग न रख उसे सर्वथा पृथक स्वतंत्र नगर के रूप में रखना चाहिये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** (मद्रास: जनरल): अब इस प्रश्न पर मत लेना चहिये। श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि इस प्रश्न पर अब राय ली जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर राय लेता हूं। पहला संशोधन है नं. 46 का जिसे प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना ने पेश किया है।

प्रस्ताव यह है:

"ऊपर के संशोधन नं. 45 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 213 के खण्ड (1) में, 'Notwithstanding anything contained in this Constitution' " (इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी) शब्दों को हटा दिया जाये।"

***श्री देशबन्धु गुप्त:** पहले इसके कि संशोधनों पर राय ली जाये, मैं अनुरोध करूंगा कि डॉ. अम्बेडकर को, बहस का जवाब देने की कृपया अनुमति प्रदान की जाये।

***अध्यक्ष:** मुझे खेद है, डॉ. अम्बेडकर से यह कहना ही भूल गया है कि बहस का वह जवाब दें। यदि डॉ. अम्बेडकर कुछ कहना चाहते हों तो सहर्ष वह कह सकते हैं। संशोधन पर फिर एक बार मैं राय ले लूंगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** सच तो यह है कि कल प्रधान मंत्री ने बहस का जवाब प्राय: दे दिया है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई: जनरल): अध्यक्ष महोदय, माननीय मित्र श्री देशबन्धु गुप्त के संशोधन के सम्बंध में मुझे यह कहना है कि मैं अच्छी तरह जानता हूं यह स्थल ऐसा नहीं उनका संशोधन समुचित रूप से पेश किया जा सकता हो। इस संशोधन में एक सिद्धान्त का प्रश्न उठता है और वह यह है कि कतिपय क्षेत्रों को प्रतिनिधित्व में इससे वजन यानी पासंघ मिल जाता है। सभा को याद होगा कि एक समय यहां सभा में प्रतिनिधित्व में पासंघ देने के सवाल पर काफी बहस हुई थी और सभा ने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया था कि किसी को भी प्रतिनिधित्व में पासंघ न दिया जायेगा। किन्तु मैं यह कहूंगा कि अनुच्छेद 67 के आधार पर जिसमें कि प्रतिनिधान के सम्बन्ध में कई सिद्धान्त रखे गये हैं, ऐसे प्रदेशों के लिये जिन्हें इन नियमों के कारण, एक भी स्थान

न मिल पाता हो, कुछ न कुछ विशेष प्रावधान रखना हमारे लिये सम्भवतः आवश्यक होगा। आखिर किसी भी प्रदेश को आप प्रतिनिधित्व से इसलिये वंचित रख सकते हैं कि गणित के नियम के हिसाब से उसे स्थान नहीं मिल पाता है। उस प्रसंग में इस प्रश्न पर हमें विचार करना होगा और उस समय मैं यह कह सकता हूं कि जब ऐसा कोई प्रदेश अस्तित्व में आयेगा और मसौदा-समिति को उसके प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में प्रावधान बनाने के लिए कहा जायेगा तो इस सम्पूर्ण प्रश्न पर हमें विचार करना होगा और सम्भवतः एक नया अनुच्छेद 67-क संविधान में हम रख लें। इससे अधिक इस सम्बन्ध में इस समय मैं कुछ नहीं कह सकता।

***अध्यक्षः** अब मैं संशोधन पर राय लेता हूं। जैसा कि मैं कह चुका हूं प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन पर मैं पुनः मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि ऊपर के संशोधन नं. 45 में, प्रस्तावित अनुच्छेद 213 के खण्ड (1) में, 'Notwithstanding anything contained in this Constitution (इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी) शब्दों को हटा दिया जाये।"

मेरा ख्याल है कि विरोधी पक्ष वाले जीत गये।

***श्री महावीर त्यागीः** ऐसा मालूम होता है कि इस सम्बन्ध में कुछ गलतफहमी हो गई है श्रीमान्। प्रस्ताव पर कृपया फिर मत लीजिये।

***अध्यक्षः** प्रस्ताव यह है:-

"कि ऊपर के संशोधन नं 45 में, प्रस्तावित अनुच्छेद के खण्ड (1) में, Notwithstanding anything contained in this Constitution (इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी) शब्दों को हटा दिया जाये।"

मेरा ख्याल है कि समर्थकों की जीत हुई।

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्षः** अब श्री देशबन्धु गुप्त के संशोधन पर मैं राय लूंगा।

***श्री देशबन्धु गुप्तः** माननीय प्रधान मंत्री के कल के वक्तव्य को और डॉ. अम्बेडकर के आज के वक्तव्य को देखते हुये इस समय मैं अपने संशोधन पर जोर देना नहीं चाहता। आशा करता हूं कि समुचित मौके पर जब अनुच्छेद 67 पर पुनरीक्षण किया जायेगा, इस सम्बन्ध में एक समुचित प्रावधान अवश्य रख दिया जायेगा।

***अध्यक्षः** क्या सभा माननीय सदस्य को संशोधन वापस लेने की अनुमति देती है?

सभा की अनुमति से संशोधन वापस लिया गया।

***अध्यक्षः** प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के संशोधन द्वारा संशोधित अनुच्छेद 213 पर अब मैं मत लूंगा। प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 213 को संशोधित रूप में, संविधान का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 213, संशोधित रूप में संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 213-क

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 213-क को लेते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरा यह प्रस्ताव है श्रीमान्:

"कि अनुच्छेद 213 के आगे निम्नलिखित नया अनुच्छेद रखा जाये:

'213 (1) Parliament may by law constitute a High Court for a State for the time being specified in Part II of the First Schedule or declare any Court in any such State to be a High Court for the purposes of this Constitution.

High Courts for States in Part II of the First Schedule.

(2) The provisions of Chapter VII of Part VI of this Constitution shall apply in relation to every High Court referred to in clause (1) of this article as they apply in relation to a High Court referred to in article 191 of this Consitution subject to such modifications or exceptions as Parliament may by law provide.

(3) Subject to the provisions of this Constitution and to any provisions of any law of the appropriate Legislature made by virtue of the powers conferred on that Legislature by or under this Constitution, every High Court exercising jurisdiction immediately before the commencement of this Constitution in relation to any State for the time being specified in Part II of the First Schedule or any area included therein shall continue to exercise such jurisdiction in relation to that State or area after such commencement.

(4) Nothing in this article derogates from the power of Parliament to extend or exclude the jurisdiction of a

High Court in any State for the time being specified in Part I or Part III of the First Schedule to, or from, any State for the time being specified in Part II of that Schedule or any area included within that State.' "

[213 (1) संसद्, विधि द्वारा प्रथम अनुसूची के भाग 2 में उल्लिखित किसी राज्य के लिये उच्च-न्यायालय गठित कर सकेगी अथवा ऐसे किसी राज्य में के किसी न्यायालय को इस संविधान के प्रयोजनों के लिये उच्च न्यायालय घोषित कर सकेगी।

प्रथम अनुसूची के भाग 2 में उल्लिखित राज्यों के उच्च-न्यायालय

(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) में निर्दिष्ट प्रत्येक उच्च-न्यायालय के सम्बन्ध में, इस संविधान के भाग 6 के अध्याय 7 के उपबन्ध, ऐसे रूपभेदों और अपवादों के अधीन रहकर, जैसे कि संसद विधि द्वारा उपबंधित करे, वैसे ही लागू होंगे जैसे कि वे इस संविधान के अनुच्छेद 191 में निर्दिष्ट किसी उच्च न्यायालय के सम्बन्ध में लागू होते हैं।

(3) इस संविधान के उपबन्धों के, तथा इस संविधान के द्वारा या अधीन समुचित विधान-मण्डल की दी हुई शक्तियों के आधार पर उस विधान मण्डल द्वारा निर्मित किसी विधि के उपबन्धों के, अधीन रहते हुये प्रत्येक उच्च-न्यायालय जो इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले प्रथम अनुसूची के भाग 2 में उल्लिखित किसी राज्य के या उसके अंतर्गत किसी क्षेत्र के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता था वह न्यायालय ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् उस राज्य या क्षेत्र के सम्बन्ध में वैसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता रहेगा।

(4) इस अनुच्छेद की कोई बात प्रथम अनुसूची के भाग 1 या 3 में उल्लिखित किसी राज्य में के किसी उच्च-न्यायालय के क्षेत्राधिकार को उस अनुसूची के भाग 2 में उल्लिखित किसी राज्य पर अथवा उस राज्य के अंतर्गत किसी क्षेत्र पर विस्तृत करने की, या उससे अपवर्जित करने की संसद् की शक्ति का अल्पीकरण नहीं करती।

यह बात याद होगी श्रीमान्, कि जब इस सभा ने भाग 1 के राज्यों के संविधान के सम्बन्ध में विचार किया था तो उस समय यह तय हुआ था कि प्रत्येक राज्य का एक उच्च-न्यायालय होगा। भाग 2 में जो राज्य हैं वह भी राज्य ही हैं इसलिये भाग 1 के राज्यों के लिये जो प्रावधान लागू होता है, यानी यह प्रावधान कि हर राज्य का अपना उच्च-न्यायालय होगा, वह भाग 2 के राज्यों के लिये भी जरूर लागू होगा। दुर्भाग्य से यह प्रावधान संविधान के प्रस्तुत मसौदे में नहीं रखा गया है। इसलिये यह जरूरी हो गया है कि अनुच्छेद 213-क को यहां रखा जाये ताकि भाग 2 में दिये गये राज्यों के लिये उच्च-न्यायालय का प्रावधान हो सके या अगर उस राज्य में कोई उच्च-न्यायालय है तो उसे उच्च-न्यायालय माना जा सके। इस अनुच्छेद के खण्ड (3) में यह प्रावधान किया गया है कि अगर भाग 2 में के राज्य के किसी विशेष क्षेत्र में कोई उच्च-न्यायालय नहीं वर्तमान है या वहां

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

उच्च-न्यायालय का निर्माण करना सम्भव नहीं है तो संसद को यह घोषित करने का अधिकार हो कि किसी पार्श्ववर्ती प्रदेश के किसी अन्य न्यायालय को ही उस विशेष क्षेत्र के प्रयोजनों के लिए उच्च-न्यायालय समझा जायेगा इस अनुच्छेद का यही अभिप्राय है।

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद पर और कोई संशोधन नहीं है। कोई सदस्य इसके सम्बन्ध में कुछ बोलना चाहता हूं? तो अब मैं इस पर राय लेता हूं।

प्रस्ताव यह है

"कि नवीन अनुच्छेद 213-क को संविधान का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

नवीन अनुच्छेद 213-क को संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 214

***अध्यक्ष:** अनुच्छेद 214 को अब लिया जाता है। इस पर एक संशोधन श्री ब्रजेश्वर प्रसाद का आया है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं अपने संशोधनों को नहीं पेश कर रहा हूं श्रीमान्।

***अध्यक्ष:** तो अब हम संशोधन नं. 52 को लेते हैं जो डॉ. अम्बेडकर के नाम से है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा प्रस्ताव यह है श्रीमान्:

"कि संशोधन सूची के संशोधन नं. 2728 के सम्बन्ध में, अनुच्छेद 214 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

'214. (1) Until Parliament by law otherwise provides, the constitution, powers and functions of the Coorg Legislative Council shall be the same as they were immediately before the commencement of this Constitution.

(2) The arrangements with respect to revenues collected in Coorg and expenses in respect of Coorg shall, until other provision is made in this behalf by the President by order, continue unchanged.' "

[214. (1) जब तक कि संसद् विधि द्वारा अन्यथा उपबन्ध नहीं करती तब तक कुर्ग की विधान-परिषद् का गठन, शक्तियां और कृत्य वैसे ही होंगे जैसे कि वे इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले थे।

(2) कुर्ग में संगृहीत राजस्व के, तथा कुर्ग के सम्बन्ध में व्ययों के, विषय में प्रबन्ध तब तक अपरिवर्तित रहेंगे जब तक कि इस बारे में राष्ट्रपति आदेश द्वारा, अन्य उपबन्ध नहीं करता।]

इस अनुच्छेद में सिवाय इसके और कोई नई बात नहीं है कि दोनों हिस्सों को इसमें अलग-अलग रखा गया है जबकि मूल अनुच्छेद में दोनों को एक साथ मिलाकर रखा गया था।

***अध्यक्षः** अब आता है संशोधन नं. 142 जो श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के नाम में है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** मैं इसे पेश नहीं कर रहा हूं श्रीमान्।

***अध्यक्षः** अब आते हैं संशोधन नं. 181 और 190 जो प्रो. शिब्बनलाल सक्सेना के नाम में है। वह सभा में उपस्थित नहीं है।

अनुच्छेद 214 पर और कोई संशोधन अब नहीं रह जाता है। इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में कोई सदस्य कुछ बोलना चाहते हैं?

अब मैं अनुच्छेद पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है:

"कि प्रस्तावित अनुच्छेद 214 को संविधान का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 214 को संविधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 275

***अध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 275 पर आते हैं। संशोधन नं. 111 को डॉ. अम्बेडकर अब पेश करेंगे।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मेरा प्रस्ताव यह है श्रीमान्:

"कि अनुच्छेद 275 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:

"That for article 275, the following article be substituted:–

'275. (1) If the President is satisfied that a grave emergency exists whereby the security of India or of any part of the territory thereof is threatened, whether by war or external aggression or internal disturbance, he may, by Proclamation make a declaration to that effect.

Proclamation of Emergency

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

(2) A Proclamation issued under clause (1) of this article (in this Constitution referred to as 'a Proclamation of Emergency')—

(a) may be revoked by a subsequent Proclamation;

(b) shall be laid before each House of Parliament;

(c) shall cease to operate at the expiration of two months unless before the expiration of that period it has been approved by resolutions of both Houses of Parliament.

Provided that if any such Proclamation is issued at a time when the House of the People has been dissolved or if the dissolution of the House of the People takes place during the period of two months referred to in sub-clause (c) of this clause and the Proclamation has not been approved by a resolution passed by the House of the People before the expiration of that period, the Proclamation shall cease to operate at the expiration of thirty days from the date on which the House of the People first sits after its reconstitution unless before the expiration of that period resolutions approving the Proclamation have been passed by both Houses of Parliament.

(3) A Proclamation of Emergency declaring that the security of India or of any part of the territory thereof is threatened by war or by external aggression or by internal disturbance may be made before the actual occurrence of war or of any such aggression or disturbance if the President is satisfied that there is immiment danger thereof.

आयात की उद्घोषणा

[275. (1) यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाये कि गम्भीर आपात विद्यमान है जिससे कि युद्ध या बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशांति से भारत या उसके राज्य-क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा संकट में है, तो वह उद्घोषणा द्वारा इस आशय की घोषणा कर सकेगा।

(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के अधीन की गई घोषणा (जो इस संविधान में आयात उद्घोषणा के नाम से निर्दिष्ट की गई है:

(क) उत्तरवर्ती उदघोषणा द्वारा विसंहत की जा सकेगी;

(ख) संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जायेगी;

(ग) दो माह की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगी जब तक कि संसद् के दोनों सदनों के संकल्पों द्वारा वह उस अवधि की समाप्ति से पहले अनुमोदित न कर दी जाये;

परन्तु यदि ऐसी कोई उद्घोषणा उस समय निकाली गई है जबकि लोक सभा का विघटन हो चुका है अथवा लोक सभा का विघटन इस खण्ड के उपखण्ड (ग) में निर्दिष्ट दो मास की कालावधि के भीतर हो जाता है तथा यदि उस कालावधि की समाप्ति के पहिले लोक सभा द्वारा पारित एक संकल्प के द्वारा उस उद्घोषणा का अनुमोदन नहीं हुआ है तो उद्घोषणा उस तारीख से जिसमें कि लोक सभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम पर बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगी जब तक कि उस तीस दिन की कालावधि की समाप्ति से पूर्व उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाला एक संकल्प संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित नहीं हो जाता है।

(3) यदि राष्ट्रपति को समाधान हो जाये कि युद्ध या बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशांति का संकट सन्निकट है तो युद्ध अथवा ऐसा कोई आक्रमण या अशान्ति के होने से पहले भी ऐसा घोषित करने वाली आपात की उद्घोषणा कि भारत की अथवा भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा इस प्रकार से संकट में है की जा सकेगी।]

यह अनुच्छेद मसौदे के अनुच्छेद 275 से बिल्कुल मिलता हुआ है। इस संशोधन द्वारा जो परिवर्तन इसमें किये जा रहे हैं वह बहुत ही थोड़े हैं। पहला परिवर्तन किया गया है इसके खण्ड (1) में। मूल अनुच्छेद में "युद्ध या आन्तरिक हिंसा" शब्द रखे गये थे और यहां इनकी जगह "युद्ध, या बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशान्ति" शब्द रखे गये हैं। सोचा यह गया है कि 'आन्तरिक हिंसा' के स्थान पर इन शब्दों को रखना ज्यादा अच्छा होगा क्योंकि आन्तरिक हिंसा में बाह्य आक्रमण नहीं शामिल किया जा सकता है और बाह्य आक्रमण को युद्ध भी नहीं कहा जा सकता है।

दूसरा परिवर्तन जो किया गया है वह है खण्ड (2) के उपखण्ड (ग) में। मूल अनुच्छेद में यह कहा गया था कि 6 मास की समाप्ति पर उद्घोषणा प्रवर्तन में न रहेगी। पर यहां यह कहा गया है कि दो मास की समाप्ति पर उद्घोषणा प्रवर्तन में न रहेगी। 6 मास की अवधि यहां बहुत लम्बी समझी गई।

संशोधन के द्वारा जो परन्तुक यहां रखा जा रहा है वह सर्वथा एक नई बात है। मूल अनुच्छेद में यह नहीं थी। इस परन्तुक द्वारा प्रावधान यह किया गया है कि यदि लोक सभा का विघटन हो चुकने पर उद्घोषणा निकाली गई है या पुरानी सभा के विघटन और नये विधानमण्डल के निर्वाचन के मध्यवर्ती काल में अगर उद्घोषणा निकाली गई है तो नया विधान-मण्डल तीस दिन की अवधि के अन्दर उस उद्घोषणा का अनुमोदन कर सकता है।

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

अनुच्छेद का अंतिम खण्ड स्वत: स्पष्ट है और इसके सम्बन्ध में कुछ समझाने की जरूरत नहीं है। खण्ड (1) का जो मूल अभिप्राय है उसी की पूर्ति का प्रावधान अन्तिम खण्ड द्वारा किया गया है। आपात विद्यमान न हो तो भी राष्ट्रपति को अगर वह समाधान हो जाये कि आपात का संकट सन्निकट है तो वह आपात की उद्घोषणा इस खण्ड के अधीन कर सकेगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मेरे नाम से जो संशोधन आये हैं उनमें से किसी को भी मैं पेश नहीं करना चाहता हूं।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): मेरे नाम से जो संशोधन हैं उन्हें अगर अनुमति हो तो एक साथ ही पेश कर दूं। इस छपी सूची में भी मेरे कई संशोधन दिये हुये हैं।

***अध्यक्ष:** उनको अभी पेश करना जरूरी है क्या?

***श्री एच.वी. कामत** कुछ अंशों को छोड़कर यह नया अनुच्छेद पुराने अनुच्छेद से बिल्कुल मिलता हुआ है सुतरां मेरे कई संशोधन जो सूची में है। वह बिल्कुल प्रासंगिक हो जाते हैं।

***अध्यक्ष:** नं. 2989 में केवल शाब्दिक परिवर्तन की बात है। यही बात 2990 के साथ है। नं. 2994 का यहां सवाल ही नहीं उठता है।

***श्री एच.वी. कामत:** नं. 2994 और 2995 को तो मैं पेश ही नहीं करना चाहता हूं।

मेरा प्रस्ताव यह है श्रीमान्:

"कि अनुच्छेद 275 के खण्ड (2) के उपखण्ड (क) में 'may be revoked' (प्रतिसंहत की जा सकेगी) शब्दों के आगे 'or varied' (या परिवर्तित की जा सकेगी) शब्द रखे जाये।"

अब मैं लेता हूं दूसरे सप्ताह की सूची 2 के संशोधनों को।

मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:

"कि संशोधन सम्बन्धी संशोधनों की सूची 1 (दूसरा सप्ताह) के संशोधन नं. 111 में प्रस्तावित अनुच्छेद 275 के खण्ड (1) में 'President' शब्द के आगे 'acting upon the advice of his Council of Ministers' शब्द रखे जायें।' अब मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्:

"कि संशोधन सम्बन्धी संशोधनों की सूची 1 (दूसरा सप्ताह) के संशोधन नं 111 में प्रस्तावित अनुच्छेद 275 के खण्ड (3) में 'by war or by external aggression or' (युद्ध या बाह्य आक्रमण) शब्दों को हटा दिया जाये"।

इसके बाद मेरा प्रस्ताव यह है श्रीमान्:

"कि संशोधन सम्बन्धी संशोधनों की सूची 1 (दूसरा सप्ताह) के संशोधन नं. 111 में प्रस्तावित अनुच्छेद 275 के खण्ड (3) 'occurrence of war or of any such aggression or disturbances' शब्दों की जगह 'occurrence of such disturbance' शब्द रखे जायें।"

इन संशोधनों पर कुछ कहने से पहले आपकी अनुमति हो श्रीमान्, तो इस महत्वपूर्ण अनुच्छेद 275 के सम्बन्ध में ही आम तौर पर चन्द बातें कहूंगा। दुनियां के प्रायः सभी लोकतन्त्रीय व्यवस्था वाले देशों के राजतंत्रीय एवं गणतंत्रीय दोनों ही संविधानों को मैंने छान डाला है पर किसी भी लोकतन्त्रीय देश के संविधान में मुझे ऐसे आपात प्रावधान नहीं मिले जैसे कि इस अध्याय में यहां रखे गये हैं।

जहां तक मैं याद कर पाता हूं इसके अधिक से अधिक सन्निकट पहुंचने वाले प्रावधान तीसरी रीख (जर्मन पार्लियामेंट) के वाइमार संविधान में ही पाये जाते हैं जिसे हिटलर ने इन्हीं प्रावधानों से लाभ उठाकर समाप्त कर दिया था। अब वाइमार संविधान अस्तित्व में नहीं रह गया है और उसकी जगह बान संविधान ने ले ली है। पर वाइमार संविधान में जो प्रावधान थे वह अपने संविधान में रखे गये इन आपात प्रावधानों की तुलना में कुछ भी नहीं थे। इसलिये सभा से आग्रह करूंगा कि वह इस अध्याय पर विचार करने में पूरा ध्यान दे और अपने पक्व अनुमान और समस्त बुद्धिमत्ता के साथ इस पर विचार करे। इस अध्याय के प्रावधानों द्वारा उत्तरोत्तर अधिकारों का इस तरह अपहरण होता गया है कि अध्याय समाप्त होते। संविधान के भाग तीन द्वारा प्रदत्त प्रायः सभी मूल अधिकारों का भी अभिशून्यन हो जाता है। आगे चलकर जबकि सम्बंधित अनुच्छेद आयेगा मैं इस बात पर प्रकाश डालूंगा। फिलहाल तो अनुच्छेद 265 से ही हमारा मतलब है।

जैसाकि डॉ. अम्बेडकर ने कहा है, सभा के समक्ष जो संशोधित मसौदा रखा गया है उसमें दो या तीन ही बातें ऐसी हैं जो मूल मसौदे से भिन्न हैं। कहने का मतलब यह है कि मूल मसौदे में केवल दो या तीन परिवर्तन किये गये हैं। पहला परिवर्तन यह है कि "युद्ध" शब्द के साथ "बाह्य आक्रमण" शब्द भी जोड़ दिया गया है। आजकल जबकि बिना युद्ध की घोषणा के ही तोपें चल पड़ती हैं, सम्भव है कि बिना युद्ध की घोषणा के भी बाह्य आक्रमण कहीं से हो जाये। दूसरा विश्व युद्ध इसी तरह शुरू हुआ था। हिटलर ने पोलैण्ड के साथ युद्ध शुरू होने की भी घोषणा नहीं की थी किन्तु आगे चलकर चेम्बरलेन ने जर्मनी के साथ युद्ध प्रारम्भ होने की घोषणा की।

चीन के साथ जापान ने जो युद्ध 1931 से चलाया वह भी बिना घोषणा के ही चलता रहा। इसलिये प्रस्तावित परिवर्तन सर्वथा आवश्यक है और आज की दुनिया का जो रवैया है उसको देखते हुये यह उचित भी है क्योंकि आज का युद्ध बाह्य आक्रमण से भिन्न हो सकता है। इसलिये मेरी समझ से यह परिवर्तन आवश्यक है।

[श्री एच.वी. कामत]

दूसरा परिवर्तन जो किया है वह है अवधि के सम्बन्ध में। मूल अनुच्छेद 265 में आपात उद्घोषणा के प्रवर्तन की अवधि 6 माह की रखी गई थी किन्तु इसे हटाकर यहां दो माह कर दिया गया है। इसको देखते हुये मैंने अपना संशोधन पेश किया जिसमें 6 सप्ताह की अवधि रखी गई थी।

और दूसरे जो परिवर्तन हैं वह मामूली किस्म के हैं मसलन "आंतरिक अशान्ति" के स्थान पर "आन्तरिक हिंसा" शब्द रखे गये हैं।

नये मसौदे के प्रावधानों पर मैंने जो संशोधन रखे हैं उन्हें अब मैं एक-एक करके लेता हूं। मेरा पहला संशोधन इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) के सम्बन्ध में जिसमें उद्घोषणा के केवल प्रतिसंहरण की बात कही गई है। सम्भव है परिस्थितियां इस तरह बदल जायें कि उद्घोषणा को पूर्णतः प्रतिसंहत न करके उसमें कुछ परिवर्तन मात्र कर दिया जाये इसलिए मेरी समझ से तो उद्घोषणा के प्रतिसंहरण के साथ-साथ उसमें परिवर्तन करने की बात का रख देना यहां अधिक उपयुक्त होगा।

मेरा दूसरा संशोधन नं. 147 एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात के सम्बन्ध में है और मैं चाहूंगा कि सभा इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करे। मसौदे में यह कहा गया है कि अगर राष्ट्रपति को समाधान हो जाये कि आपात विद्यमान है तो वह उसकी उद्घोषणा निकाल सकता है। जब सभा अनुच्छेद 102 पर विचार कर रही थी श्रीमान् जिसमें राष्ट्रपति के अध्यादेश सम्बन्धी शक्तियों का उल्लेख है तो आपने खुद यह महत्वपूर्ण प्रश्न यहां उठाया था कि आया इस संविधान के अधीन राष्ट्रपति अपने मंत्रिपरिषद् की राय मानने के लिए बाध्य है या नहीं राष्ट्रपति के प्रकार्यों के पालन में उसे सहायता और परामर्श देने के लिए उसके लिये एक मंत्रि परिषद् की व्यवस्था संविधान में की गई है। पर राष्ट्रपति के लिये यह आवश्यक नहीं बताया गया है कि वह मंत्रिपरिषद की राय के अनुसार ही चलेगा। उस प्रश्न के उत्तर में डॉ. अम्बेडकर ने यह कहा था कि मसौदा-समिति उस प्रश्न पर विचार करेगी और उस सम्बन्ध में यहां आवश्यक संशोधन उपस्थित करेगी। किन्तु जहां तक मैं जानता हूं सभा में इस दिशा में कोई भी संशोधन अभी तक मसौदा-समिति की ओर से नहीं आया है। इसलिये यह कमी ज्यों की त्यों अभी भी बनी हुई है। आज जिस अनुच्छेद पर हम यहां विचार कर रहे हैं उसमें राष्ट्रपति को ऐसी असाधारण शक्तियां दी गई हैं कि वैसी शक्तियां, जैसा कि मैंने कहा है, दुनिया के किसी भी लोकतंत्रीय देश में—चाहे वहां राजतंत्रात्मक व्यवस्था हो या गणतंत्रात्मक—किसी भी अधिशासी प्रमुख को, चाहे वह नाममात्र के लिए प्रमुख हो या केवल दिखावे के लिए प्रमुख हो या अन्य किसी तरह का प्रमुख हो, नहीं दी गई हैं। इसलिए संरक्षण के लिए इस प्रावधान का रखना जिसका कि मैंने सुझाव दिया है बहुत जरूरी है। राष्ट्रपति को अपनी ही मरजी से काम न करना चाहिये बल्कि उसके लिए लाजिमी होना चाहिये कि मंत्रिपरिषद् की राय के अनुसार ही वह चले। अगर मंत्रिवर्ग उसे यह राय देते हैं कि गम्भीर आपात विद्यमान है तभी संविधान के अधीन उस आशय की उद्घोषणा निकालने की शक्ति उसे रहनी चाहिये। उसमें यह अधिकार हमें न निहित करना चाहिये कि केवल

इस आधार पर उसको समाधान हो गये हैं, वह आयात की उद्घोषणा कर सकता है। यह न केवल बहस-मुबाहिसे की बात है बल्कि यह एक गम्भीर बात है। ईश्वर न करे ऐसा हो, पर यह सम्भव है कि बहुत से मामलों में राष्ट्रपति एवं मंत्रिपरिषद् में मतैक्य न हो। उन दोनों में मतभेद और कलह खड़ा हो सकता है और आपात की स्थिति आने पर सम्भव है, राष्ट्रपति मंत्रियों से परामर्श लिये बिना ही उद्घोषणा निकाल दे। अगर ऐसा होता है तो देश पर क्या विपत्ति आ सकती है, इसे सोचकर ही मैं कांप उठता हूं। यदि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की अवहेलना करके स्वेच्छा से काम करता है तो इससे पहली बात तो यह होगी कि तानाशाही का पथ प्रशस्त हो जायेगा और फिर क्रांति, विद्रोह जैसी भयंकर और भी कई बातें हो सकती हैं। राजनीति के विद्यार्थी इसे मंजूर करते है कि तीसरी जर्मन रीख के वाइमार संविधान के प्रावधान, जिनके द्वारा अधिशासी प्रमुख को व्यापक शक्तियां दी गई थीं, तथा विघटन सम्बन्धी शक्ति के प्रयोग ही हिटलर के उत्थान में सहायक हुये थे और उसके लिए तानाशाही का पथ प्रशस्त किया था, जिसका परिणाम हम सबको विदित है। वाइमार संविधान के अनुच्छेद 48 की तुलना में अध्याय 11 के हमारे ये प्रावधान कहीं अधिक भयानक हैं। इसलिए मैं अपील करूंगा कि इस अध्याय को हमें जल्दी में न पास करना चाहिये। इसमें ऐसा संशोधन कर देना चाहिये कि न केवल व्यक्ति को स्वतन्त्रता ही बल्कि संघबद्ध इकाइयों की स्वतंत्रता और शक्तियां भी सुरक्षित रहें और उन पर अनावश्यक दबाव न पड़े। अध्याय में हमें ऐसा संशोधन कर देना चाहिये कि इस संविधान द्वारा प्रत्याभूत स्वतंत्रतायें वास्तविक रहें न कि केवल दिखावे के लिये।

अब इस सिलसिले में एक बात कहना चाहता हूं श्रीमान्। संविधान में हम राष्ट्रपति के अध्यादेश निर्माण सम्बन्धी अधिकार का प्रावधान पहले ही कर चुके हैं। संसद् जब सत्र में न हो और राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाये कि परिस्थिति ऐसी है कि उसमें अध्यादेश निकालना जरूरी है तो वह ऐसा कर सकता है। मैं यह बताना चाहता हूं कि ऐसे अधिकारों का दुरुपयोग किस तरह किया जा सकता है। हम तो इस विश्वास पर ऐसे अनुच्छेदों को पास कर देते हैं कि इनका ठीक ही उपयोग किया जायेगा। किन्तु अध्यादेश सम्बन्धी शक्ति के सम्बन्ध में अभी दो दिन पहले एक ऐसी बात हुई है जो अनुकूलित भारत-शासन-अधिनियम के प्रावधानों का जो मेरा थोड़ा बहुत ज्ञान है उसके अनुसार गवर्नर जनरल में निहित अध्यादेश विषयक शक्ति का दुरुपयोग ही है। इस अध्यादेश विशेष के गुणदोष को मैं चर्चा नहीं कर रहा हूं। दो दिन पहले रविवार को अपहृत व्यक्तियों को वापस करने का एक अध्यादेश निकाला गया है। इस सम्बन्ध में मैं आपका ध्यान, 1947 के भारत-आदेश द्वारा अनुकूलित भारत-शासन-अधिनियम की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। अध्यादेश निकालने के बारे में जो धारा है उसमें ऐसी व्यवस्था नहीं है कि अध्यादेश की अवधि की समाप्ति के पूर्व वह पुनः जारी किया जा सकता हो। उक्त अध्यादेश की अवधि समाप्त होती थी गत रविवार को, किन्तु उससे एक दिन पहले ही यानी शनिवार को ही इस आशय को एक विज्ञप्ति निकाल दी गई कि अध्यादेश रविवार से आगे की प्रवर्तन में रहेगा और यह भी किया गया कि उस समय जबकि संविधान-सभा सत्र में थी, जहां तक कि इस संविधान-सभा का सम्बन्ध है, वह चाहे संविधान-सभा के रूप में समवेत हो या विधान-मण्डल के रूप से समवेत हों, भारत-अधिनियम से उसमें कोई अन्तर नहीं

[श्री एच.वी. कामत]

आता है: इसलिये उचित यह था कि अध्यादेश विधान-मण्डल के रूप में एक दिन के लिए समवेत इस सभा के समक्ष रखा जाता ताकि वह उस पर विचार करती। ऐसा करना अध्यादेश को पुन: जारी करने से कहीं अच्छा होता। यह उन घटनाओं में से एक है जिनसे यह प्रकट होता है कि अध्यादेश-शक्ति का किस तरह दुरुपयोग किया जा सकता है, किया गया है और आगे किया जायेगा। शासन या संस्थायें शक्ति का दुरुपयोग न कर पायें इसके लिए हमें कोई संरक्षण-मूलक व्यवस्था जरूर रखनी चाहिये।

अब मैं लेता हूं अपने दूसरे संशोधन को, यानी दूसरे सप्ताह की दूसरी सूची के संशोधन नं. 154 को। यह अनुच्छेद 275 और डॉ. अम्बेडकर के संशोधन नं. 111 के सम्बन्ध में है। इस संशोधन को हमें संशोधन नं. 156 के साथ मिलाकर पढ़ना होगा। अगर ये दोनों संशोधन स्वीकृत हो जाते हैं तो खण्ड (3) का रूप यह होगा:

"A Proclamation of Emergency declaring that the security of India or of any part of the territory thereof is threatened by internal disturbance may be made before the actual occurrence of such disturbance if the President is satisfied that there is imminent danger thereof."

(यदि राष्ट्रपति को समाधान हो जाये कि आभ्यन्तरिक अशान्ति का संकट सन्निकट है, तो ऐसी अशान्ति के होने से पहिले भी, ऐसा घोषित करने वाली आपात की उद्घोषणा कि भारत की अथवा भारत राज्य-क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा इस प्रकार से संकट में है, की जा सकेगी।)

इन दोनों संशोधनों का अर्थात् संशोधन नं 154 और 156 का उद्देश्य यह है कि युद्ध और बाह्य आक्रमण तथा आभ्यन्तरिक अशान्ति में विभेद कर दिया जाये। अगर यह अनुच्छेद खण्ड (3) के साथ उसी रूप में रखा जाता है, जिसमें कि डॉ. अम्बेडकर ने उसे पेश किया है, तो राष्ट्रपति संविधान के अधीन रहकर भी उस सूरत में भी आपात की उद्घोषणा कर सकेगा जबकि वस्तुत: युद्ध न हो रहा हो और युद्ध की तैयारी या उसकी अफवाह मात्र चल रही हो। इस शताब्दि के आधुनिक युद्धों में युद्ध सम्बन्धी तैयारियों की चर्चा सदा चलती रहती है। आज भी आप यह कह सकते हैं कि युद्ध सन्निकट है। कौन व्यक्ति यह कहने का साहस कर सकता है कि युद्ध नहीं शुरू हो सकता है? युद्ध तो किसी भी समय शुरू हो सकता है। यूरोप और अमेरिका में जिस तरह बातें हो रही हैं उसको देखते हुये तो यही प्रतीत होता है कि समय बीतने के साथ-साथ उसी अनुपात से युद्ध की आशंका भी बढ़ती जा रही है। ऐसी स्थिति में अब मान लीजिये कि राष्ट्रपति पद पर एक ऐसा व्यक्ति विराजमान हो जाता है तो अधिकार की प्रबल चाह रखता है, जो राज्य या जनता के हित की बिना परवाह किये प्राप्त शक्तियों का ही प्रयोग चाहता है, तो क्या होगा? प्रस्तुत संविधान में हमने संरक्षण के रूप में ऐसा कोई प्रावधान रखा ही है कि राष्ट्रपति मन्त्रिपरिषद् की राय के अनुसार चलने के लिए बाध्य है। यह सच है कि उनकी सहायता के लिए मन्त्रिपरिषद होगी, पर हमने यह बात कहीं भी नहीं कही है कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद्

की राय के अनुसार ही चलेगा। अगर हम ऐसा संरक्षण नहीं रखते हैं तो राष्ट्रपति सारी शक्ति अपने हाथ में ले सकता है और यह कह सकता है—"मुझे यह अधिकार प्राप्त है, कौन मुझे बाधा पहुंचा सकता है?" फिर उस पर क्या हमारा अंकुश रह जायेगा? आज अगर एक राह चलता आदमी भी कहता है कि युद्ध शुरू होने वाला ही है तो कौन इस बात को काटेगा? इसलिये यदि यह अनुच्छेद इसी रूप में पास हो जाता है तो राष्ट्रपति इसका लाभ, अनुचित उठा सकता है और उसमें जो शक्तियां निहित की गई हैं उनका दुरुपयोग करके वह आपात की उद्घोषणा उस समय भी कर सकता है, जबकि वस्तुतः युद्ध हो ही न रहा हो। वह ऐसा केवल इसलिये करेगा कि वह राज्य के संविधान को नष्ट करना चाहता है, उसे व्यर्थ करना चाहता है। एक लोकतन्त्रीय देश के प्रतिनिधि रूप में यहां बैठकर क्या हम ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए तैयार हैं, जबकि राष्ट्रपति ऐसी स्थिति में हो कि वह संविधान को ही उलट देना चाहता हो? हम यहां तोड़फोड़ करने वाले लोगों की बात कर रहे हैं पर हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि न केवल आन्दोलनकारी, विद्रोही और क्रांतिकारी लोग ही संविधान को उलट सकते हैं बल्कि पदारूढ़ लोग और आधिकारारूढ़ व्यक्ति भी संविधान को उलट सकते हैं। इसलिये मेरे संशोधन, श्रीमान्, ऐसे हैं कि उन पर विचार करना आवश्यक है। मेरे तीनों संशोधनों पर—नं. 147, 154 और 156 पर विचार होना चाहिये। पहले संशोधन के द्वारा यह कोशिश की गई है कि राष्ट्रपति के लिए मंत्रिपरिषद की राय के अनुसार चलना आवश्यक होगा। अन्य दो संशोधनों के द्वारा यह किया गया है कि जब तक कि वस्तुतः युद्ध या बाह्य आक्रमण की स्थिति अस्तित्व में न आ जाये, राष्ट्रपति को आपात की उद्घोषणा करने की शक्ति न रहेगी। राष्ट्रपति तो यह कह सकता है कि "सुदूरपूर्व में या यूरोप अथवा अमेरिका में युद्ध शुरू हो जाने की अब पूर्ण सम्भावना पैदा हो गई है। इसलिये मैं यह अनुभव करता हूं आपात विद्यमान है। हमारी सीमा से अनतिदूर कुछ लोग युद्ध की तैयारियां कर रहे हैं।" यह सच है कि हम किसी भी राज्य को अपना शत्रु नहीं समझते हैं पर अन्य राज्य हमें अपना शत्रु समझ सकते हैं। जब हम इस शताब्दि के द्वितीयार्ध में प्रवेश करेंगे उस समय तक विश्व की स्थिति और भी खराब हो सकती है और जहां तक कि युद्ध का सम्बन्ध है, विश्व की स्थिति और भी आशंका जनक हो सकती है। हम जो संविधान बना रहे हैं, वह इस शताब्दि के प्रथमार्ध के अंतिम वर्ष में प्रख्यापित होगा और हम एक लोकतन्त्र के रूप में अपना जीवन शुरू करेंगे; इस शताब्दि के द्वितीयार्ध में प्रवेश करने पर और यह काल मेरी समझ से ऐसा होगा जो सभी सम्भावनाओं एवं संकटों से तो पूर्ण रहेगा ही, पर साथ ही आशा और विश्वास से पूर्ण रहेगा। इसलिये राह में आने वाले खतरों से हमें सावधान रहना चाहिये, श्रीमान्। हमें यह कोशिश करनी चाहिये कि हमारा यह संविधान, जिसकी हम रचना कर रहे हैं, वह समाहृत रहे और लोग उसका पालन करें और ऐसा न होने पाये कि वह कहीं उलट दिया जाये, न केवल आन्दोलनकारियों द्वारा, विद्रोहियों और क्रांतिकारियों द्वारा बल्कि उन लोगों के द्वारा भी जो अधिकारारूढ़ हैं, पदारूढ़ हैं।

अब मुझे केवल एक ही बात कहनी है, श्रीमान्, और वह है अंतिम दो संशोधनों—नं. 154 और 156 के सम्बन्ध में। जैसाकि मैंने कहा है, राष्ट्रपति के लिये, ऐसे राष्ट्रपति के लिये जो कि एक मनुष्यमात्र होगा, जिसे मानव बुद्धि के

[श्री एच.वी. कामत]

द्वारा ही पथ-प्रदर्शन प्राप्त करना होगा, यह बहुत ही कठिन होगा कि वह अकेले इस बात का निर्णय कर सके कि आई ऐसी आन्तरिक अशान्ति का संकट सन्निकट है या नहीं, जिसमें आपात की उद्घोषणा निकालना जरूरी हो। क्या हमने राज्य में पर्याप्त शक्तियां नहीं निहित कर रखी हैं जिनसे वह आन्तरिक अशान्ति के संकट से बच सकें। हमारे पास पर्याप्त पुलिस बल है। हमने सदा चिल्ला चिल्ला कर यह कहा है कि आन्तरिक अशान्ति के दमन के लिए सैन्यबल न कभी प्रयुक्त किया जायेगा। अगर यही बात है तो आप यहां इस खण्ड में यह प्रावधान क्यों रख रहे हैं कि अशान्ति का संकट सन्निकट होने पर राष्ट्रपति आपात की उद्घोषणा केवल इस आधार पर निकाल सकेगा कि उसका समाधान हो गया है कि अशान्ति का संकट सन्निकट है। हां, अशान्ति प्रारम्भ हो जाती है और चारों ओर फैलने लगती है तो उस सूरत में तो यह बात समझ में आती है कि देश की शांति-सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है। पर अगर किसी एक छोटे से राज्य में कहीं-दंगा हो जाता है तो राष्ट्रपति क्यों आपात की उद्घोषणा की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले, जबकि संविधान में यह नहीं कहा गया है कि मंत्री-परिषद् की राय के अनुसार ही वह चलेगा? (3) मेरा ख्याल है कि इन मामलों में जो शक्तियां गवर्नर, मंत्रिमण्डल और इकाइयों में निहित की गई हैं वह पर्याप्त हैं। इसलिये मैं यह महसूस करता हूं कि कुल मिलाकर यह खण्ड ऐसा प्रावधान है जिसे हम बुद्धि-संगत नहीं कह सकते हैं और मुझे बड़ी खुशी होगी अगर यह हटा दिया जाये। ऐसा नहीं हो सकता हैं तो मैं सभा का बड़ा कृतज्ञ होऊंगा, यदि समुचित रूप से विचार कर लेने के बाद वह मेरी इस बात से राजी हो जाये कि राष्ट्रपति को आपात की उद्घोषणा जारी करने की शक्ति तभी होगी, जबकि आन्तरिक अशान्ति का संकट उत्पन्न हो न कि उस समय जबकि आन्तरिक अशान्ति के प्रारम्भ होने की आशंका सन्निकट हो, क्योंकि वह तो एक ऐसी स्थिति है जिसका सही अनुमान कोई भी नहीं कर सकता है। जिसका कोई निश्चित आभास मानव चातुर्य को मिल नहीं सकता है। हो सकता है कि युद्ध की तैयारियां चल रही हों पर उस सूरत में भी यह नहीं कहा जा सकता है कि युद्ध का संकट सन्निकट आ ही गया है। हम बादलों का गर्जन सुन सकते हैं, बिजली की चमक देख सकते हैं, पर यह जरूरी नहीं है कि गर्जन और चमक के बाद पानी बरसे ही। संस्कृत में एक श्लोक है, जिसमें यह भाव बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया गया है।

श्लोक यह है:-

अम्भोधा बहवो वसन्ति गगने, सर्वेऽपि नैतादृशाः

केचिद् दृष्टिभिरार्द्रयन्ति धरणी, गर्जन्ति केचिद् वृथा।।

यह तो हो सकता है कि राजनीतिज्ञों की और अन्य लोगों की गरम-गरम जोशीली वक्तृतायें सुनने में आयें, जिनमें लड़ाई का राग अलापा गया हो पर उसे हम युद्ध का प्रारम्भ थोड़े ही कह सकते हैं। ऐसी हालत में यह बुद्धिमत्ता के प्रतिकूल होगा, संविधान की भावना के प्रतिकूल होगा, अगर हम राष्ट्रपति को ऐसे अनियंत्रित अधिकार दे देते हैं। मेरी समझ से दुनिया के अन्य किसी भी लोकतन्त्रीय देश के संविधान में आपको ऐसे अधिकार की मिसाल न मिलेगी। मैं सभा से सिफारिश करूंगा कि वह मेरे विभिन्न संशोधनों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करे।

***अध्यक्ष:** इस अनुच्छेद पर और अन्य कई संशोधन भी हैं। संशोधन नं. 2996 पंडित हृदयनाथ कुंजरू के नाम में है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त: जनरल): संशोधित मसौदे को देखते हुये मैं अपना यह संशोधन नहीं पेश करना चाहता हूं।

(संशोधन नं. 2997, 3000 और 3004 नहीं पेश किये गये।)

***अध्यक्ष:** सभी संशोधन पेश हो चुके हैं। अब मूल अनुच्छेद और संशोधनों पर विचार किया जा सकता है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, राष्ट्रपति की आपात-शक्तियों से सम्बन्ध रखने वाले इस महत्वपूर्ण अनुच्छेद के बारे में जो वक्तृता यहां माननीय मित्र श्री कामत ने दी है वह मैंने बड़े ध्यान से सुनी है। वस्तुत: यह अनुच्छेद बड़ा भयावह दिखाई देता है और ऐसा मालूम होता है, मानों इस अनुच्छेद के अनुसार राष्ट्रपति तो सर्वथा स्वेच्छाचारी ही हो सकता है। पर अनुच्छेद 276 और 277 के प्रावधानों को देखने पर, मैं नहीं समझता कि ऐसी आशंका की कोई गुंजाइश रह जाती है। अनुच्छेद 276 में यह प्रावधान है कि आपात की उद्घोषणा के प्रवर्तन में रहने पर संघ की कार्यपालिका को राज्यों की कार्यपालिकाओं को निदेश देने का अधिकार रहेगा तथा यह कि संघ-संसद् को उन विषयों के सम्बन्ध में भी विधि-निर्माण की शक्ति प्राप्त रहेगी जो विषय केवल राज्य या प्रान्तों के ही अधिकार के अन्दर हैं। अनुच्छेद 277 के द्वारा राष्ट्रपति एवं कार्यपालिका को यह शक्ति दी गई है कि अनुच्छेद 249 और 259 में प्रावहित आर्थिक मामलों के सम्बन्ध में वह सभी अधिकार अपने हाथ में ले सकते हैं। अगर इस अनुच्छेद में यह कहा गया होता, जैसा कि अनुच्छेद 276 में कहा गया है कि संविधान के सभी प्रावधानों का प्रवर्तन निलम्बित रहेगा और राज्य के कार्यपालिका की सारी शक्तियां राष्ट्रपति में निहित रहेंगी, तो अवश्य इस अनुच्छेद के विरोध का कुछ कारण ही समझ में आता। मेरा ख्याल है कि गत महायुद्ध के सम्बन्ध में अपने लोगों का अनुभव यही रहा है कि युद्ध कभी भी जारी न रखा जा सकता था अगर प्रान्तों को अपने स्तर पर लाने की शक्ति केन्द्र को न प्राप्त रहती। इतना बड़ा अकाल बंगाल में इसलिये पड़ सका कि केन्द्र को प्रान्त के खाद्य सम्बंधी प्रवेध में पर्याप्त शक्ति नहीं थी। इसलिये मैं यह समझता हूं कि खास कर के आज के दिनों में जबकि हमारा लोकतन्त्र एक नवजात लोकतन्त्र है, आपात की विद्यमानता में हमें केन्द्र को कम से कम यह सीमित शक्तियां तो अवश्य ही देनी चाहियें। व्यक्तिगत रूप से मैं यह अनुभव करता हूं कि यह अनुच्छेद पहले से ही काफी नरम है, तथा संघ-कार्यपालिका एवं संसद् की शक्तियां प्राय: वैसी हैं जैसी कि राज्यों के विधान-मण्डलों की हैं और युद्ध अथवा आभ्यन्तरिक विद्रोह या अन्य ऐसी किसी बात के पैदा होने पर ही केन्द्र को राज्यों से अधिक शक्तियां प्राप्त रहेंगी। हम लोग सदा से ही एक शक्तिशाली केन्द्र के लिए लड़ते आ रहे हैं। मेरा ख्याल है कि इस अनुच्छेद के द्वारा हमें वह बात मिल जाती है जो अब तक हम चाहते रहे हैं। अब हमारा केन्द्रीय शासन बड़ा दृढ़ रहेगा और आपात की स्थिति आने पर राज्य की भलाई और सुरक्षा के लिये हम आपात की उद्घोषणा कर सकेंगे।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

मैं नहीं समझता कि कोई भी व्यक्ति देश की वर्तमान स्थिति का ख्याल रखते हुये इस अनुच्छेद का विरोध कर सकेगा। अनुच्छेद 278 के बारे में, जिसके द्वारा प्रचुर शक्तियां राष्ट्रपति को प्रदत्त की गई हैं, मुझे सन्देह अवश्य है पर अनुच्छेद 275, 276 और 277 के सम्बन्ध में तो मुझे विश्वास है कि किसी को भी कोई आपत्ति नहीं हो सकती है क्योंकि उनकी रचना बड़ी ही सावधानी से की गई है और उनमें अब कोई भी परिवर्तन आवश्यक नहीं है। माननीय मित्र श्री कामत ने यहां जर्मनी के संविधान का हवाला दिया है, तीसरी रीख का हवाला दिया है, पर शायद यह हवाला वह अनुच्छेद 278 के सम्बन्ध में दे सकते थे, न कि इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में। इस अनुच्छेद के द्वारा केन्द्र को वैसी शक्तियां नहीं प्राप्त होती हैं जैसी कि वाइमर संविधान द्वारा वहां के केन्द्रीय शासन को प्राप्त होती थीं। इसके द्वारा तो केवल उतनी ही शक्ति दी गई है, जो युद्ध स्थिति में अथवा आन्तरिक अशान्ति की दशा में शासन चलाने के लिए अपेक्षित हो सकती हैं। मैं नहीं समझता कि कोई भी केन्द्रीय शासन प्रशासन का काम चल सकता है और देश की रक्षा कर सकता है, अगर उसे कम से कम उतने अधिकारों से लैस नहीं रखा जाता है। इसलिये मेरा ख्याल है कि केवल इस अनुच्छेद के आधार पर यदि हम अपने संविधान की तुलना वाइमर संविधान से करते हैं तो यह अनुचित होगा। हम जानते हैं कि अभी गत युद्ध में, जिससे हम अभी बाहर निकले हैं, अमेरिका में भी राज्यों की शक्तियां नहीं छीनी गई थीं। पर हमें यह याद रखना चाहिये कि अमेरिका में प्रेसिडेण्ट ही कार्यपालिका का प्रमुख रहता है और उसे इतनी शक्तियां प्राप्त हैं जो दुनिया के अन्य किसी भी पदाधिकारी को नहीं प्राप्त हैं और हमारे राष्ट्रपति को तो यह शक्तियां नहीं ही प्राप्त रहेंगी। श्री कामत की इस बात से मुझे आश्चर्य हुआ कि आपात की उद्घोषणा निकालने में राष्ट्रपति को अपने मंत्रि-परिषद् की राय के अनुसार ही चलना चाहिये। ऐसा तो वह हमेशा करेगा ही। संविधान में यह बात भले ही लिपिबद्ध न की जाये, पर मैं समझता हूं कि बहुत सी बातें तो रूढ़ियों के आधार पर ही की जायेंगी। मैं नहीं समझता कि कोई भी राष्ट्रपति अपने मंत्रियों की राय के विरुद्ध कुछ भी कर सकेगा ओर फिर उद्घोषणा तो मुझे विश्वास है कि वह कभी भी न निकालेगा, यदि मन्त्री उसके विरुद्ध हैं। मैं यह अनुभव करता हूं कि प्रस्तुत अनुच्छेद बहुत आवश्यक है। अब उद्घोषणा के प्रवर्त्तन की अवधि घटाकर 6 महीने से 2 महीना कर दी गई है और इससे अनुच्छेद में बहुत बड़ा सुधार हो गया है। इस अवधि के अन्दर संसद् के दोनों सदनों द्वारा कानून पास हो जाना चाहिये।

खण्ड (3) में यह कहा गया है:–"यदि राष्ट्रपति को समाधान हो जाये कि युद्ध या बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशांन्ति का संकट सन्निकट है तो युद्ध या ऐसा आक्रमण या अशान्ति के होने से पहले भी, ऐसा घोषित करने वाली आपात की उद्घोषणा कि भारत की अथवा भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा इस प्रकार से संकट में है, की जा सकेगी"। मैं नहीं समझता कि यह खण्ड अनावश्यक है या इसके द्वारा बहुत ज्यादा शक्ति राष्ट्रपति को दे दी जाती है। यदि हमें युद्ध का सामना करना है, जिसे हम पहले से ही देख रहे हैं और फिर भी उसके लिये पहिले से ही तैयार नहीं रहते हैं, तो यह हमारी अबुद्धिमत्ता होगी। वस्तुतः अमेरिका युद्ध शुरू होने के अरसा बाद युद्ध में शामिल हुआ था। पर उधार पट्टा की नीति अख्तियार करके वह पहले से ही युद्ध के

लिये तैयार हो गया था। जापान ने जब हमला किया था उस समय वह युद्ध के लिए बिलकुल तैयार हो चुका था। इसलिये सवाल यह उठता है कि अगर भारत वर्ष विश्व युद्ध में पड़ जाता है तो मेरी समझ से उचित यही होगा कि राष्ट्रपति को इसकी शक्ति प्राप्त रहनी चाहिये कि वह आपात की उद्घोषणा कर सके और केन्द्रीय राज्यपालिका-प्रमुख को निर्देश भेजने का केन्द्रीय सरकार को अधिकार दे सके तथा संसद् को उन विषयों के सम्बन्ध में विधि बनाने की क्षमता दे सके जो अभी राज्यों के क्षेत्राधिकार के अधीन है। मेरी समझ से यह अनुच्छेद बहुत आवश्यक अनुच्छेद है और इसका कोई भी अंश ऐसा नहीं है जिस पर कोई आपत्ति की जा सकती हो। आशा है इसे सभा का समर्थन प्राप्त होगा।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के प्रावधानों में जो सिद्धान्त अन्तर्ग्रस्त हैं उनसे मैं सर्वथा सहमत हूं। इस देश की जनता के हित में इस अनुच्छेद को मैं बहुत ही आवश्यक समझता हूं किन्तु मैं यह अनुभव करता हूं कि इसके प्रावधान बहुत ही अन्तर्ग्रस्त हैं ओर इनसे हमारी सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती है। जहां तक कि अनुच्छेद के खण्ड (1) का सम्बन्ध है, मेरा ख्याल है कि उसमें संशोधन होना चाहिये। सभा को चाहिये कि इस खण्ड (1) में ऐसा संशोधन कर दे कि वह हमारी वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप जो जाये। मैं यह महसूस करता हूं, श्रीमान्, कि "युद्ध या बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशांति से" शब्दों के आगे कुछ और अन्य शब्द भी हमें रख देना चाहिये। मैं इस पक्ष में हूं कि इन शब्दों के बाद "आर्थिक या राजद्रोह का आन्दोलन" शब्द यहां जोड़ देने चाहियें। अगर यह शब्द यहां रख दिये जाते हैं तो राष्ट्रपति को आवश्यक कार्रवाई करने में कुछ सुविधा मिल जायेगी और व्यापक परिधि उसे प्राप्त हो जायेगी। मैं यह अनुभव करता हूं, श्रीमान्, कि इन दोनों ही शब्दों को रखना सभा को अगर मंजूर न हो तो कम से कम उनमें से एक शब्द तो रख ही लिया जाये और उससे भी आवश्यकता की पूर्ति हो सकेगी। मैं समझता हूं कि "आभ्यन्तरिक अशान्ति" शब्दों के आगे "या कोई स्थिति पैदा होने पर" शब्द रख देने चाहियें। यह भी हमारी आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त होगा।

***अध्यक्ष:** पर माननीय सदस्य ने इसके लिए कोई संशोधन तो रखा नहीं है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मैं केवल सभा को सुझाव दे रहा हूं।

***अध्यक्ष:** पर सभा इस सुझाव को स्वीकार कैसे कर सकती है जब तक कि कोई संशोधन न हो?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** ऐसा करने का एक रास्ता है और वह यह कि इस खण्ड (1) पर पुनर्विचार का प्रस्ताव रखा जाये। सभा के लिये यह रास्ता खुला है। इस खण्ड (1) में संशोधन करने का एक और भी उपाय है। मैं यह अनुभव करता हूं, श्रीमान् कि "युद्ध या बाह्य आक्रमण अथवा आभ्यन्तरिक अशान्ति" शब्दों को हटा ही देना चाहिये। इनके हटा देने पर खण्ड का यह रूप होगा: "यदि राष्ट्रपति को समाधान हो जाये कि गम्भीर आपात विद्यमान है जिससे भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा संकट में है तो वह उद्घोषणा द्वारा उस आशय की धारण कर सकेगा"

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

आखिर भारत की सुरक्षा का प्रश्न ही तो हमारे लिए सर्वाधिक महत्व रखता है। हम यह नहीं जानते हैं कि वह सुरक्षा कैसे संकट में पड़ने वाली है। क्या हमारा अभिप्राय यह है कि जिन संकटों का यहां उल्लेख किया है उनके अलावा और किसी संकट के द्वारा अगर देश की सुरक्षा खतरे में पड़ती है तो उससे उसकी हम रक्षा न करेंगे? मैं ऐसा नहीं समझता हूं कि "युद्ध या बाह्य आक्रमण अथवा आभ्यन्तरिक अशान्ति" शब्दों के अन्दर संकट की सभी कल्पनायें आ जाती हैं। इनके अलावा और भी ऐसी सम्भावनायें हो सकती हैं जिनसे हमारी सुरक्षा संकट में पड़ सकती है। मेरी इस बात के जवाब में शायद यह दलील पेश की जाये कि अगर अन्य किसी प्रकार से भारत की सुरक्षा संकट में पड़ती है तो उसके परिणामस्वरूप आभ्यन्तरिक अशान्ति अवश्य उत्पन्न होगी, सुतरां 'आभ्यन्तरिक अशान्ति' शब्द यहा पर्याप्त रूप से व्यापक शब्द है। मैं इस विचार को नहीं मानता। इसका मतलब केवल यही होगा कि राष्ट्रपति को देश की द्रुतगति से बिगड़ने वाली परिस्थिति को नीरव होकर देखते रहना होगा और कार्रवाई वह तभी कर सकेगा जबकि आभ्यन्तरिक अशान्ति बहुत बड़े पैमाने पर भयानक रूप में देशभर में फैल जाये। राष्ट्रपति में यह शक्ति और अनियन्त्रित शक्ति निहित ही रहनी चाहिये कि अगर वह यह महसूस करता है कि देश में आपात विद्यमान है तो वह उसके सम्बन्ध में कार्रवाई कर सकता हैं आभ्यन्तरिक अशान्ति तो शुरू होगी तब जब कि आपात का संकट चरम सीमा पर पहुंच जायगा। क्या आप यह चाहते हैं कि जब तक एक संकट चरम सीमा पर पहुंच जाये देश की उससे रक्षा ही न की जाये? मैं यह चाहता हूं कि राष्ट्रपति उसी समय कार्रवाई करे जब वह यह महसूस करने लगे कि राजद्रोही आन्दोलन इस सीमा तक पहुंच गये हैं कि आपात का संकट विद्यमान हो गया है, भले ही उस समय आभ्यन्तरिक अशान्ति का संकट न पैदा हुआ हो। दुष्टता का दमन तुरन्त होना चाहिये। पैदा होते ही उसे कुचल देना चाहिये। यह नीति बहुत ही गलत होगी कि बुराई जब तक फैल न जाये हम कोई कार्रवाई ही न करें और बैठे रहें। उस हालत में तो यह हो सकता है कि जब आप कार्रवाई करें उस समय तक काफी देर हो चुकी हो और स्थिति काबू से बाहर चली जाये। चीन पर नजर डालिये। वहां जो कुछ हो रहा है उससे तो हमारी आंखे खुल जानी चाहिये। मैं तो यह महसूस करता हूं कि हम वस्तुतः आपात के काल से इस समय गुजर रहे हैं। आखिर बंगाल में आज क्या हो रहा है? आज जो बंगाल में हो रहा है वही कम या बेशी अन्य प्रान्तों में भी हो रहा है। इसलिये मैं इस पक्ष में हूं कि इन शब्दों को हटा देना चाहिये। मैं यह अनुभव करता हूं, श्रीमान्, कि जो शब्द हमने सुझाये हैं उनको यहां जोड़ देना चाहिये। कुछ सदस्यों ने एक संशोधन के रूप में इन शब्दों को जोड़ने का सुझाव मसौदा-समिति के सामने रखा भी था। वह संशोधन, संशोधन सूची में आया था। पर इनको न रखने के पीछे शायद यह कारण है कि वे लोग, जो इसके हामी हैं कि राज्यों को यानी इकाइयों को स्वातंत्र्य प्राप्त रहना चाहिये, ऐसा महसूस करते हैं कि अगर ये शब्द यहां रख दिये गये तो स्वायत शासन की उनकी जो कल्पना है वह केवल एक दिखावटी और अवास्तविक कल्पना ही रह जायेगी, क्योंकि आर्थिक संकट के नाम पर या राजद्रोही आन्दोलन को दबाने के नाम पर राष्ट्रपति जो चाहे कर सकेगा। किन्तु मैं यह अनुभव करता हूं कि, श्रीमान् कि, भारत की सुरक्षा का प्रश्न प्रान्तीय स्वराज्य के प्रश्न से कहीं ज्यादा महत्व रखता है।

अब मैं खण्ड (2) को लेता हूं। इसमें कहा गया है कि:—"खण्ड (1) के अधीन की गई घोषणा संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जायेगी"। मैं पूछता हूं कि उसे संसद् के समक्ष क्यों रखा जाये? क्या इसलिये कि हमारे दिमाग में यह आशंका लटक रही है कि राष्ट्रपति कहीं तानाशाह न बन जाये? क्या इसी तानाशाही के डर के कारण ही संविधान में हम यह प्रावधान रख रहे हैं? अगर आप इसी कारण से यह प्रावधान रख रहे हैं तो मैं कहूंगा कि संरक्षण के लिये जो व्यवस्था आप कर रहे हैं वह सर्वथा अवास्तविक है। संवैधानिक प्रावधानों के द्वारा आप तानाशाही के खतरे को नहीं दूर कर सकते हैं। बल्कि उलटे मैं तो यह महसूस करता हूं कि राष्ट्रपति की शक्तियों पर प्रतिबन्ध रखकर, उसकी कार्रवाई की परिधि को सीमित रखकर हम कार्यपालिका के हाथों को दुर्बल बना रहे हैं और देश में तानाशाही की स्थापना का पथ प्रशस्त कर रहे हैं।

मैं इसके भी खिलाफ हूं, श्रीमान्, कि इस प्रश्न पर संसद् की जो राय हो उसके अनुसार चला जाये, क्योंकि मुझे यह डर है कि प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर जो विधान-मण्डल चुना जायेगा उसमें अधिकांश अनपढ़ और अपरिपक्व लोग ही रहेंगे। क्या यह वांछनीय होगा कि देश की सुरक्षा के प्रश्न पर ऐसे अपरिपक्व सदस्यों की सभा से फैसला लिया जाये? मैं यह उन सदस्यों से जानना चाहता हूं जो इस प्रश्न पर मुझसे असहमत हैं। मान लीजिये, संसद् यह कहती है कि भारत की सुरक्षा को कोई खतरा नहीं है तो क्या आप देश की सुरक्षा को केवल इसलिये संकट में पड़ने देंगे कि संसद् के सदस्यों की राय में कोई खतरा नहीं है? मैं समझता हूं, संकट है या नहीं, उसे सदस्यों से ज्यादा अच्छी तरह राष्ट्रपति ही समझ सकेगा। परिस्थिति के सम्बन्ध में सदस्यों से अच्छा निर्णायक राष्ट्रपति होगा।

एक और बात है जिसका मैं यहां जिक्र करना चाहूंगा। इसे कहूं या न कहूं, इसको लेकर मैं द्विविधा में पड़ गया था पर मैं यह अनुभव करता हूं कि अपनी बात को साफ-साफ कह देना ही ज्यादा अच्छा है। मैं संसद् के विरुद्ध हूं क्योंकि मैं ऐसा महसूस करता हूं कि संसद् के सदस्यों का भरोसा नहीं किया जा सकता है। आप फ्रांस को देखिये, इतिहास पर दृष्टिपात कीजिये वहां राज्य के सभी अंगों में नाजी प्रवेश कर गये थे। मन्त्रियों में, विधायकों में, सेना के अफसरों में, राज्य के सभी कर्मचारियों में नाजीवाद का विषय प्रविष्ट हो गया था और उन्हीं लोगों के कारण राज्य का पतन हुआ। आखिर वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनी गयी संसद् भारतीय सुरक्षा के प्रश्न पर कैसे निर्णायक बन सकती है? ये लोग पंचमार्गा बन सकते हैं विदेशी शक्ति के ऐजेंट बन सकते हैं। विप्लव के आन्दोलनों का जो आप विकास देख रहे हैं वह वास्तविक है। मुझे कार्यपालिका में जितना विश्वास है उतना विधि बनाने वालों में नहीं। इसलिये इस सुझाव के साथ इस अनुच्छेद का मैं समर्थन करता हूं कि जो शब्द मैंने सुझाये हैं उनको यहां रखना चाहिये और उद्घोषणा को संसद् के समक्ष रखने की जो बात अनुच्छेद में कही गई है उसे निकाल देना चाहिये।

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य की वक्तृता में हस्तक्षेप करना मैंने पसन्द नहीं किया है। वह बोल रहे थे एक संशोधन पर, जिसकी सूचना उन्होंने दी थी पर उसे पेश करने से आपने इरादतन इंकार कर दिया।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** इस बात के सम्बन्ध में मैं स्पष्टीकरण चाहता हूं

***अध्यक्षः** कोई भी स्पष्टीकरण यहां अपेक्षित नहीं है। हम सभी इसे समझते हैं। आपने एक संशोधन की सूचना दी थी जिसमें यह कहा गया था कि आप के सुझाये शब्द अनुच्छेद में लिपिबद्ध किये जाने चाहिये। आपने उस संशोधन को जानबूझकर पेश करने से इनकार किया और फिर यहां आकर एक लम्बी वक्तृता दे डाली कि मसौदा-समिति को चाहिये कि आपके शब्दों को अनुच्छेद में रख ले। मैं नहीं समझता कि आपका यह कार्य ठीक था।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मसौदे भर में यही प्रवृत्ति सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है कि केन्द्रीय शासन को अधिक से अधिक शक्तियां दी जायें और मैं इस प्रवृत्ति को बड़े सन्देह से देखता आ रहा हूं। मूल अनुच्छेद की तुलना में, जिस पर कि यह संशोधन पेश किया गया है, इस अनुच्छेद विशेष में केन्द्र को और भी प्रबल शक्तियां दे दी गई हैं, उसे और भी मजबूत बना दिया गया है। कई बातों के सम्बन्ध में मेरी समझ से इस अनुच्छेद द्वारा न केवल बिल्कुल नवीन प्रावधान ही रखे गये हैं बल्कि राष्ट्रपति में ऐसे अधिकार और शक्तियों को निहित करने का प्रयास किया गया है, जो लोकतन्त्रीय उत्तरदायी शासन के उस स्वरूप के सर्वथा अनुरूप है जिसे मानने की शिक्षा हमें दी गई है।

पहली बात तो यह है, श्रीमान्, कि 'आन्तरिक हिंसा' के स्थान पर यहां जो 'आन्तरिक अशान्ति' शब्द रखे गये हैं उससे मैं बड़ी चिन्ता और सन्देह में पड़ गया हूं। ये ऐसे शब्द हैं जिनकी परिभाषा देनी कठिन है। इस परिवर्तन का जो भी प्रभाव होता हो पर इन दोनों शब्दों में जो विभेद है उससे मुझे यही प्रतीत होता है कि इस परिवर्तन से लोकतन्त्रीय स्वातन्त्र्य पर अनुचित आघात पहुंच सकता है। राज्य के या उसके किसी भाग के आन्तरिक प्रबन्ध में किंचितमात्र भी अशान्ति हुई या अशान्ति का रंचमात्र भय भी पैदा हुआ तो राष्ट्रपति को आपात की स्थिति घोषित करने का एवं उद्घोषणा निकालने का अधिकार हो जायेगा।

संशोधन के तीसरे भाग में, मेरे ख्याल से, यही बात और गम्भीर रूप में और अधिक स्पष्टता के साथ दिखाई देती है जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि आभ्यन्तरिक अशान्ति के उत्पन्न होने पर नहीं बल्कि उसके उत्पन्न होने की सम्भावना भी यदि दिखाई देती हो तो राष्ट्रपति आपात की उद्घोषणा निकाल सकेगा। कार्यपालिका के दिमाग में अशान्ति उत्पन्न होने का भय भी यदि हो तो इसे आधार पर इस तरह की उद्घोषणा निकाली जा सकेगी। मैं यह अनुभव करता हूं कि प्रस्तुत प्रावधान उस प्रावधान से किसी भी तरह भिन्न नहीं है जिसके अधीन 1942 में अनेक आर्डिनेंस निकाले गये थे जिनमें न केवल कार्य का किया जाना ही दण्डनीय बताया गया था बल्कि यह कहा गया था कि कार्य किये जाने की सम्भावना होने पर भी आर्डिनेंस के अधीन व्यक्ति के विरुद्ध कार्रवाई की जा सकती है। अपनी यह हुकूमत जिसको हम बनाने जा रहे हैं अपना राज्य जिसका कि हम निर्माण करने जा रहे हैं वह यदि उदारता, सहिष्णुता, विचार एवं अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य के विचार से सब तरह पूर्वगामी शासन से ही मिलता-जुलता है और अन्तर इन

दोनों में अगर केवल काले और गोरे का ही है, तो मैं कहूंगा कि हमने अपने देशवासियों के सामने जो यह प्रतिज्ञा की है कि हमारा स्वराज्य वास्तविक रूप में राम राज्य होगा, वह सर्वथा झूठी है।

मैं अनुभव करता हूं, श्रीमान्, कि यही प्रवृत्ति हमें इस संशोधन के अन्य भाग में भी दिखाई देती है जिसमें यह कहा गया है कि उद्घोषणा के प्रवर्तन की अवधि आगे भी बढ़ाई जा सकती है, अगर संसद् के दोनों सदन उसके अनुमोदन का एक प्रस्ताव पास कर दें। जहां तक मैं देखता हूं मुझे ऐसा कोई प्रावधान यहां नहीं दिखाई देता है जिसके अधीन सदन उद्घोषणा को अस्वीकार या रद्द कर सकते हों, यह घोषित कर सकते हों कि ऐसी उद्घोषणा निकालने का कोई कारण नहीं इसलिये उद्घोषणा रद्द की जाती है और अब वह प्रवर्तन में न रहेगी। यह बिल्कुल सम्भव है कि किसी मौके पर राष्ट्रपति, जिसके लिये यह लाज़िमी नहीं होगा कि मंत्रियों की राय के अनुसार ही चले, अपनी ही मरजी पर चले और आपात की उद्घोषणा निकाल दें। ऐसी बात उस समय खासतौर पर हो सकती है जबकि संसद् का विघटन होने वाला हो और दलबन्दी की तनातनी जोरों पर हो, जब दूसरे ऐसे मंत्रियों के या दल के अधिकारारूढ़ होने की सम्भावना हो जो पूर्वगामी अधिकारारूढ़ दल के कार्यक्रम को और उद्घोषणा को न जारी रखने के ही इरादे से आते हों। ऐसे मौके पर यदि इस तरह के प्रावधान का लाभ उठाया जाता है और इस आधार पर कि देश में या उसके किसी भाग में अशान्ति उत्पन्न होने की आशंका है, राष्ट्रपति अपनी मरजी से या अपने आक्रमणशील मंत्रियों की राय से आपात की उद्घोषणा निकालता है तो क्या होगा? हो सकता है नया विधान-मण्डल उद्घोषणा को जारी न रखना चाहता हो। हो सकता है वह उसे नापसन्द करता हो। इस संविधान में निचले सदन के लिये निष्ठा तो बहुत दिखाई गई है पर इसमें ऐसी अवस्थाओं के लिए ऐसा कोई प्रावधान नहीं रखा गया है कि राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित उद्घोषणा को विधान-मण्डल रद्द कर सकता है। और न निचले सदन को यही कहने का अधिकार दिया गया है कि अशान्ति की आशंका का कोई कारण नहीं है और इसलिये ऐसी उद्घोषणा की कोई आवश्यकता नहीं है।

मसौदा बनाने वालों की नीयत को ठीक मानते हुये भी—और उस प्रावधान के लिए मुझे उसकी नीयत पर रंचमात्र भी शक नहीं है—मैं यह कहूंगा कि मेरी समझ से उपरोक्त आशय के प्रावधान का संविधान में न होना एक बहुत बड़ी कमी है। मेरी समझ से इस आशय के एक विपरीत प्रावधान का यहां न होना, कि सदनों को अधिकार होगा कि राष्ट्रपति की उद्घोषणा को रद्द या अस्वीकार कर दे, इस आशंका के लिये एक गम्भीर कारण बन जाता है कि सारी शक्तियां कार्यपालिका को दी जा रही हैं और संसद् को केवल एक तरह के मुहर देने वाले कार्यालय के रूप में रखा जा रहा है जिसे कार्यपालिका के सभी कार्यों पर अपनी स्वीकृति की मुहर भर दे देनी होगी। मैं नहीं समझता कि यह व्यवस्था अपने उन आदर्शों और अभिलाषाओं के अनुरूप है जिनके आधार पर देश में हम लोकतन्त्रीय शासन की स्थापना करने जा रहे हैं। यह व्यवस्था तो उन आर्डिनेन्सों के किसी तरह भी भिन्न नहीं है जिनके अधीन पहले हमें रहना पड़ा था और जिनके अधीन शायद हमें आगे और रहना पड़ेगा, अगर इस तरह की व्यवस्था की हम उपेक्षा कर देते हैं।

[प्रो. के.टी. शाह]

"आन्तरिक हिंसा" के स्थान पर यहां "आन्तरिक अशान्ति" शब्द रखने में एक बड़ा जबरदस्त खतरा है। अशान्ति की परिभाषा तो समय और स्थिति के अनुसार की जायेगी। खास करके जब चुनाव सन्निकट होगा तो तनातनी जोरों पर रहेगी और जनता का जोश भी चरम-सीमा पर पहुंचा रहेगा। ऐसे समय अशान्ति कहीं भी पैदा हो जा सकती है। पर अपने इस स्वतन्त्र संविधान में ऐसी अशान्ति को आपात न मानना चाहिये जिसमें कार्यपालिका प्रमुख हो उद्घोषणा निकालने का और संविधान को निलम्बित करने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा। अनुगामी अनुच्छेदों को ध्यान में रखते हुये तथा उद्घोषणा के प्रभाव को ध्यान रखते हुये यदि आप इस प्रावधान पर विचार करें तो आप देखेंगे कि वस्तुतः इस प्रावधान से तो व्यक्ति या प्रदेश के स्वशासन के अधिकार से ही वंचित हो जाता है। इसलिये मेरे ख्याल से यह प्रावधान ऐसा है कि इसका जितना भी विरोध किया जाये कम है। आशा करता हूं कि सभा इस पर फिर से विचार करने पर राजी होगी और यह कोशिश करेगी कि मैंने जिन बातों को यहां रखने का आग्रह किया है उनमें कम से कम कुछ बातें, मसलन यह बात कि सदनों को उद्घोषणा को नामंजूर करने का अधिकार होना चाहिये, तो अवश्य ही इस अनुच्छेद में स्थान पा जायें और राज्य की सुरक्षा के बहाने, जैसाकि मुझे यहां प्रतीत होता है, कार्यपालिका-प्रमुख को अत्यधिक अधिकार न दे दिये जायें।

***डॉ. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद पर अब तक जो बहस हुई है उसे सुन लेने के बाद माननीय मित्र श्री कामत द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन के उस अंश का, जिसमें मन्त्रिपरिषद् की राय के अनुसार चलने की बात कही गई है, समर्थन करने ही का मैं प्रबल आग्रह बोध कर रहा हूं। प्रस्तुत अनुच्छेद संविधान के महत्वपूर्ण अनुच्छेदों में से एक है। एक विशेष व्यक्ति को हम अत्यधिक शक्तियां दे रहे हैं और आपात सम्बन्धी शक्तियों का प्रयोग वह अपने निजी विवेक से कर सकेगा। प्रस्तुत अनुच्छेद में ऐसी कोई बात नहीं है जिसमें यह प्रकट होता हो कि उद्घोषणा निकालने से पूर्व राष्ट्रपति के लिए यह आवश्यक होगा कि वह मंत्रियों से परामर्श ले या आपात के लिए कोई सिद्धान्त निर्धारित करे कि ऐसी हालत को आपात समझा जायेगा। यह बात बिलकुल उसके निजी विवेक पर छोड़ दी गई है और हम अच्छी तरह जानते हैं कि व्यक्तिगत विवेक या निर्णय प्रायः भूल ही कर सकते हैं। यही कारण है जो मैं यह समझता हूं कि उद्षोघणा निकालने से पहले राष्ट्रपति के लिये यह आवश्यक होना चाहिये कि वह अपने मंत्रियों से परामर्श ले ले।

***पंडित ठाकुरदास भार्गवः** यह मतलब तो अनुच्छेद से निकलता ही है।

***डॉ. पी.एस. देशमुखः** मैं पहले से ही यह समझे बैठा था। मैं जानता था कि यह दलील रखी जायेगी कि राष्ट्रपति अपने मंत्रिपरिषद् से बिना परामर्श लिये स्वतः जो ठीक समझेगा करेगा, यह बात तो कल्पना से भी परे है। फिर भी खण्ड का जो रूप है वह ऐसा है कि नियमादि को बारीकी से मानने वाला राष्ट्रपति संविधान के शब्दों के अनुसार मंत्रिपरिषद् के प्रतिकूल राय देने पर भी आपात की उद्घोषणा स्वविवेक से कर सकता है। अगर ऐसी स्थिति पैदा होती है तो मैं नहीं समझता क्या होगा। मैं जो इस बात पर जोर दे रहा हूं कि संविधान में

स्पष्ट रूप से यह प्रावधान लिपिबद्ध कर देना चाहिये कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार ही चलेगा; उसका कारण यह है, जैसाकि अभी प्रो. शाह ने कहा है, कि हम उत्तरदायी शासन की स्थापना करने जा रहे हैं। हमारी शासन-व्यवस्था इंग्लैण्ड के समानान्तर होगी न कि अमेरिका के। भले ही हम इसकी कल्पना न कर सकते हों कि राष्ट्रपति ऐसा गैर-जिम्मेदार होगा कि बिना मंत्रिपरिषद की राय के भी आपात की उद्घोषणा निकालेगा, किन्तु यह बात भी सर्वथा असम्भव नहीं है कि स्थिति विशेष में वह उसी निष्कर्ष पर पहुंचे, भले ही मंत्रिपरिषद् की अन्यथा राय हो, कि आपात विद्यमान है। मंत्रिपरिषद् से परामर्श लेकर भी अगर वह आपात की उद्घोषणा करता है तो उस हालत में हो सकता है, स्थिति बुरी हो जाये। यह सम्भव है, जैसा कि प्रो. शाह ने फरमाया है, राष्ट्रपति में निहित शक्तियों का मंत्री लोग खुद निर्वाचन प्रयोजनों के लिए उपयोग करना चाहें और निर्वाचन के पहले आपात की उद्घोषणा निकलवा कर विरोधी पार्टी का मुंह सी दें और राष्ट्रपति को दी हुई शक्तियों का उपयोग अपने दल के स्वार्थ के लिए करें। पर अगर राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् के परामर्श की उपेक्षा कर अपनी मरजी से चलता है तो देश में क्या स्थिति होगी? यदि माननीय सदस्यों को यही विश्वास है कि संविधान में इसकी पर्याप्त व्यवस्था है कि राष्ट्रपति हर मौके पर मंत्रिपरिषद् से परामर्श लेगा ही और हर मौके पर उसमें और मंत्रिवर्ग में मतैक्य रहेगा ही, तो मुझे कुछ नहीं कहना है। पर मेरी समझ में यह बात नहीं आती है और न आ सकती है। यदि आप लोग राष्ट्रपति के सद्भाव पर ही भरोसा करके ऐसा प्रावधान रख रहे हैं तो मैं आपसे सहमत नहीं हूं। ऐसे महत्वपूर्ण प्रावधान को, जो भारत के भविष्य और भाग्य पर प्रभाव डाल सकता हो, केवल भाग्य या दैव के भरोसे पर यहां हम स्थान दे दें इससे मैं सहमत नहीं हो सकता। इसलिये मैं प्रबल आग्रह करूंगा कि ऐसी बात को आप एक व्यक्ति के निर्णय पर न छोड़ें। आखिर सबकी अपनी-अपनी अलग मनोवृत्ति होती है। हो सकता है कोई राष्ट्रपति कमजोर दिल का और जरा सी बात में घबरा जाने वाला व्यक्ति हो और केवल इसलिये कि कोई सभा मजिस्ट्रेट की आज्ञा पर उठा न दी गई या कहीं एकाध मारपीट की घटना हो गई, वह यह समझ बैठे कि आपात की उद्घोषणा का पर्याप्त कारण पैदा हो गया है। जैसाकि हम सभी जानते हैं, ऐसे घबरालू स्वभाव के लोग सभी जगह हैं। और ऐसे भी दिलेर लोग हैं जो भयानक से भयानक विपत्तियों का सामना करने का पर्याप्त साहस रखते हैं। इसलिये यह ठीक नहीं होगा कि हम कोई जोखिम उठावें और किसी व्यक्ति के स्वभाव पर भरोसा करके यहां संविधान में कोई स्पष्ट प्रावधान न करें। खासकर के मैं यह इसलिये कह रहा हूं कि हम उत्तरदायी शासन की व्यवस्था करने जा रहे हैं। हमें यहां यह कह देना चाहिये कि उस सम्बन्ध में भी राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की राय के अनुसार ही चलेगा। माननीय मित्र श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने यह फरमाया है कि राष्ट्रपति को स्वविवेक से कार्य करने की शक्ति अवश्य प्राप्त रहनी चाहिये। पर मान लीजिये, मंत्रिपरिषद् से यह मतैक्य नहीं रखता है और आपात की उद्घोषणा निकाल देता है। उसकी शक्तियां क्या हैं और वह काम कैसे करेगा? यदि मंत्रिपरिषद् उससे सहमत नहीं है तो स्थिति क्या होगी? हो सकता है देश में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाये और यह भी सम्भव है कि सेना में बगावत हो जाये और देश में गृहयुद्ध शुरू हो जाये। भगवान् ही जानता है कि ऐसी स्थिति में देश की क्या गति होगी। इसलिये मैं नहीं समझता कि संविधान में यह प्रावधान रखना किसी तरह भी

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

अवांछनीय हो सकता है कि आपात की उद्घोषणा निकालने से पहले राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् से जरूर परामर्श ले ले। इसमें प्रतिष्ठा-हानि की कोई बात नहीं है। आखिर आपात की उद्घोषणा के बाद भी यदि राष्ट्रपति स्थिति को काबू में लाना चाहता है तो उसे कार्यपालिका और मंत्रिपरिषद् की सहायता लेनी ही होगी। एक व्यक्ति के विवेक पर उसे छोड़ने में या भाग्य पर भरोसा करने में कोई लाभ नहीं है। मैं प्रबल आग्रह करूंगा कि प्रस्तावित संशोधन को अनुच्छेद में अवश्य स्थान दिया जाये।

***काजी सैयद करीमुद्दीन** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरी समझ से डॉ. अम्बेडकर के संशोधन की परिधि आवश्यकता से अधिक व्यापक है। कम से कम मुझे तो इस तरह का प्रावधान दुनिया के और किसी भी संविधान में देखने को नहीं मिला। अमेरिका और इंग्लैण्ड के संविधानों में तो आपात-विधि सम्बन्धी कोई प्रावधान हैं ही नहीं। जो भी हो, मैं ऐसा समझता हूं कि डॉ. अम्बेडकर सम्भवत: पश्चिमी बंगाल की स्थिति को लेकर ज्यादा घबरा गये हैं। हम प्रस्तुत प्रावधान ऐसे मौके पर बनाने जा रहे हैं जब देश ऐसी स्थिति में पहुंच गया है जिसमें हम यह आशंका अनुभव करने लगे हैं कि प्रान्तों में कहीं ऐसी स्थिति न पैदा हो जाये जो केन्द्र को मंजूर न हो। श्री ब्रजेश्वर प्रसाद तो यहां तक कह रहे हैं कि संसद् के सदस्यों पर वह भरोसा नहीं कर सकते हैं और उद्घोषणा को संसद् के समक्ष रखा ही न जाये। यह एक ऐसा बेमिसाल विचार है जिसे सम्भवत: बहुत से लोग स्वीकार न करेंगे। मेरा अपना ख्याल यह है कि उनका यह कथन लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों से सर्वथा असंगत है। पहली संसद् की रचना के बाद या किसी भी संसद् के निर्माण के बाद जो भी कार्यपालिका गठित की जायेगी वह संसद् की राय के अनुसार ही बनाई जायेगी और अगर किसी कार्यपालिका को सदन का विश्वास नहीं प्राप्त है तो वह अधिकारारूढ़ ही नहीं रह सकती है, वह हटा दी जायेगी। डॉ. अम्बेडकर द्वारा प्रस्तावित संशोधन के खण्ड (3) में यह कहा गया है कि अगर आभ्यन्तरिक अशान्ति का, आतंक का, राजद्रोह के आन्दोलनों का और हत्या के अपराधों का खतरा पैदा हो गया हो तो राष्ट्रपति किसी प्रान्त के संविधान को निलम्बित कर सकता है। मेरा ख्याल है कि संविधान के निलम्बन के लिए खण्ड (3) में जो आधार रखे गये हैं वह बहुत ही लचर हैं। आभ्यन्तरिक अशान्ति तो दो दलों में भी पैदा हो सकती है। चुनाव के समय किसी प्रान्त में कहीं झगड़ा खड़ा हो सकता है। जैसा प्रो. शाह ने कहा है, चुनाव के समय हो सकता है तनातनी जोरों पर रहे और लोग लड़ाई और झगड़ा कर बैठें। यह आभ्यन्तरिक अशान्ति ही कही जायेगी किन्तु निश्चय ही ऐसी आभ्यन्तरिक अशान्ति के आधार पर संविधान का निलम्बन न होना चहिये। अब लीजिये "हिंसा के अपराध" की बात को। डकैती भी हिंसा सम्बन्धी अपराध कही जा सकती है। हमें यह बात साफ-साफ बतानी होगी कि संविधान के निलम्बन के लिए क्या-क्या बातें पर्याप्त समझी जायेंगी। केवल यह कह देना ही काफी नहीं है कि हत्या सम्बन्धी अपराधों को भी संविधान के निलम्बन के लिए एक कारण समझा जायगा। दुनिया के हर संविधान में, जहां ऐसे प्रावधान रखे गये हैं 'युद्ध या बगावत होने पर या युद्ध और बगावत की आशंका होने पर' शब्द रखे गये हैं। इसलिये

संविधान के निलम्बन के लिये जो आधार यहां रखे गये हैं, वह मेरी समझ से श्रीमान्, ऐसे नहीं है कि सिर्फ उनके आधार पर हम संविधान को निलम्बित होने दें। वस्तुत यह दुर्भाग्य की बात है कि संशोधन में, मंत्रिमण्डल के सदस्यों से या प्रान्तीय कार्यपालिका से परामर्श लेने का प्रावधान नहीं रखा गया है। अगर यह संशोधन स्वीकृत हो जाता है तो प्रान्तीय स्वराज्य केवल दिखावे की चीज रह जायेगी। उदाहरण के लिये, मान लीजिये कि पश्चिमी बंगाल में वह पार्टी अधिकारारूढ़ हो जाती तो केन्द्रस्थ पार्टी-विरोधी है उस हालत में होगा यह कि भले ही पश्चिमी बंगाल की हुकूमत यह समझती हो कि वहां आभ्यन्तरिक अशान्ति ऐसी नहीं है कि उसके लिये वहां के संविधान को निलम्बन किया जाये, फिर भी केन्द्र की इच्छा और उसकी विचारधारा जबरदस्ती बंगाल पर लाद दी जायेगी। इसका मतलब, दूसरे शब्दों में यह हुआ कि कोई भी पार्टी जो केन्द्र के अधिकारारूढ़ दल के विरुद्ध होगी उसे प्रान्त में शासन न करने दिया जायेगा। ऐसी स्थिति का होना अवश्यम्भावी है। पश्चिमी बंगाल में आभ्यन्तरिक अशान्ति इस समय भी है, हत्या के अपराध और राजद्रोह के काम अब भी हो रहे हैं, पर वहां संविधान इसलिये निलम्बित नहीं किया गया है कि वहां कांग्रेस पार्टी की हुकूमत है जो केन्द्रस्थ पार्टी की विचाराधारा से सहमत है। पर मान लीजिये वहां या अन्य किसी प्रान्त में कोई दूसरा दल अधिकारारूढ़ हो जाता है तो उस हालत में क्या होगा? परिणाम यह होगा कि ज्यों ही वहां की हुकूमत का केन्द्र से मतभेद होता है और वहां आन्तरिक अशान्ति पैदा होती है, राष्ट्रपति, जो कि केन्द्र में बहुमत प्राप्त दल द्वारा निर्वाचित व्यक्ति होगा, प्रान्त में आयात की स्थिति पैदा हो जाने की उद्घोषणा कर देगा। इसका मतलब यह होगा कि लोकतंत्रीय सिद्धान्तों पर हम चलेंगे नहीं। इसलिये खण्ड (3) में उल्लिखित कारणों के आधार पर संविधान को निलम्बित करना औचित्यपूर्ण नहीं माना जा सकता है। इसका मतलब तो यह होगा कि खण्ड (3) को रखकर हम कोई लोकतन्त्रीय सिद्धान्त नहीं रख रहे हैं। हम लोगों के दिमाग में यह बेचैनी पैदा हो गई है कि अगर कोई प्रान्त केन्द्र के विरुद्ध जाता है तो यह प्रावधान इतना निरंकुश है, इतना बेमिसाल है कि प्रान्त में किसी विपक्षी दल को शासनारूढ़ ही न रहने दिया जायेगा और आन्तरिक अशान्ति, हत्या या राजद्रोह की कार्रवाइयों का रंचमात्र भी बहाना मिलने पर वहां का संविधान ही निलम्बित कर दिया जायेगा। इसलिये मेरा कहना यह है कि घबराहट में इस तरह का कोई भी प्रावधान हमें संविधान में न रखना चाहिये। मेरी समझ से श्री कामत का संशोधन सर्वथा उचित है और मैं उसका समर्थन करता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 275 का खण्ड (1) जिस संशोधित रूप में कि अब यह यहां पेश किया गया है, वह मेरी समझ से समूचे संविधान में एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रावधान है। कई सदस्यों ने यह आशंका व्यक्त की है कि हो सकता है इसका उपयोग जनता की समुचित भावनाओं को दबाने के लिए, लोकतन्त्रीय व्यवस्था को कुचलने के लिए किया जाये। पर मेरा कहना यह है कि इस खण्ड द्वारा तो राष्ट्रपति को केवल आपात की उद्घोषणा निकालने की शक्ति मात्र प्राप्त होती है। यह राष्ट्रपति को उसके लिए बाध्य अथवा प्रोत्साहित नहीं करता है कि वह बिना गम्भीरतापूर्वक विचार किये हुये ही उद्घोषणा निकाल दे। इस सम्बन्ध में यहां दूसरे देशों की मिसाल भी पेश की गई है। पर मैं यह कहूंगा कि अन्य देशों में जो लोकतन्त्रीय व्यवस्था है वह इस प्रकार सुप्रतिष्ठित हो चुकी है और वहां के लोग कानून का इतना आदर करने वाले हो गये हैं कि

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

वहां आभ्यन्तरिक अशान्ति का वैसा खतरा है नहीं जैसाकि हमारे देश में है। मैं कहूंगा कि हमें वस्तुस्थिति पर सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से विचार करना चाहिये। मेरा कहना यह है कि हमारे देश में, बाह्य आक्रमण को तो जाने दीजिये, आन्तरिक अशान्ति के कई खतरे हैं और वह वास्तविक हैं। युद्ध का जो संकट है वह आज केवल अनुमान की बात नहीं रह गया है। आज मामूली से मामूली बहाने पर दुनिया के किसी भी भाग में युद्ध शुरू हो सकता है और दुनिया के किसी भाग में युद्ध की एक चिनगारी भी चमकी नहीं कि समूचा पृथ्वीमण्डल युद्ध की ज्वालाओं से घिर जायेगा और जरूरी है कि भारत भी बहुत कुछ अपनी इच्छा के प्रतिकूल उसमें फंस जायेगा। इसलिये मेरा कहना यह है कि जहां तक कि युद्ध और बाह्य आक्रमण का सम्बन्ध है, ऐसी शक्ति राष्ट्रपति को अवश्य ही प्राप्त रहनी चाहिये। अब रह जाता है आभ्यन्तरिक अशान्ति का प्रश्न और इस पर हमें खूब सावधानी से विचार करना चाहिये। इस देश में लोकतन्त्रीय व्यवस्था के संस्थापन और संधारण में कई खतरे रुकावट डालेंगे। यहां लोकतन्त्रीय शासन-व्यवस्था की स्थापना के लिए अपना यह प्रस्तावित संविधान एक बिल्कुल नया प्रयोग होगा। अशान्ति और विघटन पैदा करने वाली शक्तियां देश में सर्वत्र आज भी दिखाई दे रही हैं। भ्रष्टाचार, पक्षपात, अयोग्यता का प्राबल्य आपको आज भारत के प्रायः सभी भागों में मिलेगा। इन बुराइयों के कारण पहले छोटी-छोटी अशान्ति पैदा हो सकती है और उससे फिर शनैःशनैः शासन में अव्यवस्था और देश में गम्भीर अशान्ति पैदा हो सकती है। इसलिये इस तरह की अशान्ति के संकट से बचने के लिए व्यवस्था करना जरूरी है। एक सदस्य ने इस सम्बन्ध में यहां कलकत्ते की अशान्ति का भी जिक्र किया है। किन्तु उसको लेकर आपात की उद्घोषणा इसलिये नहीं की गई है कि वहां की अशान्ति को प्रान्तीय सरकार दूर कर सकती है। अगर शान्ति बढ़ती है और इतनी व्यापक हो जाती है कि स्थानीय अधिकारी उसे काबू में नहीं कर पाते हैं और सैन्यबल की सहायता पर भी वह अशान्ति को दबाने में सफल नहीं होते हैं तो मेरी समझ से, बावजूद इस बात के कि वहां कांग्रेस दल शासनारूढ़ है, आपात की उद्घोषणा निकालना जरूरी हो जायेगा। अशान्ति पैदा करने वाली शक्तियां आज देश में सर्वत्र दिखाई दे रही हैं। कई माननीय मित्रों से मुझे यह मालूम हुआ है कि पूर्वी पंजाब के कई क्षेत्रों में आज जीवन बड़ा अरक्षित हो गया है। आम रास्तों पर वहां डकैतियां हो रही हैं और लुटेरे निर्भय होकर अपना कारोबार चला रहे हैं। अभी उस दिन की बात है, आगरे में एक अमीर आदमी के 6 वर्ष के बच्चे को रात के वक्त कोई उड़ा ले भागा। बाद में यह मालूम हुआ कि बच्चे को गायब कर दिया गया है। कितने ही आदमी, जिसमें कुछ पुलिस के लोग भी थे, बच्चे को ढूंढने के लिए निकले और दल बांध कर भिन्न दिशाओं में उन्होंने बच्चे की खोज की पर वह कहीं न मिला। बाद में बाप को सूचना मिली कि बच्चा डाकुओं के एक दल के हाथ में है जो घने जंगल में एक सुरक्षित स्थान में डेरा डाले हुये हैं और अगर बाप 60 हजार रुपया दे तो लड़का उसको वापस दे दिया जायेगा। इस सम्बन्ध में बातचीत चली जिसमें पुलिस भी शामिल थी, और अन्ततोगत्वा 30 हजार रुपये पर समझौता हुआ। पुलिस की स्वीकृति से एक उभय परिचित व्यक्ति के मार्फत, जिसे डकैतों के पास जाकर अकेले रुपया देने को कहा गया था, रुपया दे दिया गया और उस तरह बच्चा वापस मिला। अवश्य ही और ऐसी घटना नहीं है जिस पर आपात

की उद्घोषणा निकाली जाये, पर उससे यह जरूर जाहिर होता है कि ऐसी घटनाओं के फलस्वरूप आगे चलकर आम अशान्ति पैदा हो सकती है। जिसके लिये आपात की उद्घोषणा निकालना जरूरी हो सकता है। अपने लोकतन्त्र के शैशव काल में इस तरह की शक्ति का प्रावधान करना सैद्धान्तिक दृष्टि से जरूरी है। मैं भी यही चाहता हूं, जैसाकि अन्य माननीय सदस्य चाहते हैं, कि आपात की स्थिति कभी न पैदा हो और न उद्घोषणा ही निकाली जाये। पर आपात विषयक ऐसे अधिकार को प्रावहित करना आवश्यक है इससे इनकार नहीं किया जा सकता। मैं कहूंगा कि यह शक्ति राष्ट्रपति को प्राप्त रहनी चाहिये।

फिर एक सवाल यह उठाया गया है कि क्या यह अनिवार्य होना चाहिये कि कार्रवाई करने के पहले राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् से राय ले ही ले। मैं तो कहूंगा कि यह प्रश्न केवल एक वाद-विवाद की बात है। जहां तक कि अध्यादेश का सम्बन्ध है उसमें सद्यःस्कृत्यता की वैसी बात नहीं है और मन्त्रियों की राय उसके लिए अवश्य ले ली जायेगी। किन्तु आपात की उद्घोषणा में तो सद्यःस्कृत्यता का प्रश्न निहित है। हो सकता है उद्घोषणा बहुत ही अल्पकालिक सूचना के साथ करनी पड़े। हो सकता है राष्ट्रपति कहीं दौरे पर हो और उसे यह परामर्श मिले कि गम्भीर आपात उपस्थित हो रहा है और उसे तत्क्षण कार्रवाई करनी पड़े। इसलिये बिना मंत्रियों की राय के भी उद्घोषणा निकालने की शक्ति उसे प्राप्त रहनी चाहिये। पर मेरी समझ से ऐसी स्थिति शायद ही कभी उत्पन्न हो। मेरा ख्याल है कि जब राष्ट्रपति को कोई जबरदस्त शक्ति प्राप्त रहती है तो वह हर मामले में खूब विवेक के साथ उस शक्ति का प्रयोग मंत्रियों की राय लेकर ही करेगा ताकि उसके हाथ मजबूत रहें। इसमें शक नहीं है कि उद्घोषणा के लिये वह मंत्रियों की राय लेगा ही, पर मैं समझता हूं कि इसे लाजिमी बना देना कि राय लेकर ही वह उद्घोषणा निकाले, ठीक न होगा।

फिर प्रश्न उठते हैं उद्घोषणा के प्रतिसंहरण के सम्बन्ध में। स्पष्ट रूप से संविधान में यह प्रावहित किया गया है कि आपात की उद्घोषणा राष्ट्रपति द्वारा प्रतिसंहत की जा सकेगी। माननीय मित्र श्री कामत ने यह बताया है कि उद्घोषणा में परिवर्तन करने की शक्ति के लिये कोई प्रावधान नहीं किया गया है। किन्तु मेरी समझ से इसकी कोई जरूरत नहीं है। राष्ट्रपति उद्घोषणा को प्रतिसंहत करके फिर एक नई उद्घोषणा परिवर्तित रूप में निकाल सकता है। इस रूप में उद्घोषणा में परिवर्तन किया जा सकता है और इसलिये मेरा कहना यह है कि उद्घोषणा में परिवर्तन करने के लिए अनुच्छेद में एक व्यवस्था वर्तमान है।

फिर इस बात को आवश्यक कर दिया गया है कि उद्घोषणा विधान-मंडल के समक्ष रखी जाये और इसके सम्बन्ध में भी यहां कुछ सदस्यों को आपत्ति है। मेरा कहना यह है कि इस प्रावधान में ऐसी कोई बात ही नहीं है जिससे राष्ट्रपति की प्रतिष्ठा पर आघात पहुंचता हो। यह प्रावधान तो सर्वथा आवश्यक है क्योंकि मेरी समझ से यदि आपात की उद्घोषणा निकाली जाती है और फिर विधान-मण्डल के समक्ष उपस्थित की जाती है, तो वस्तुतः सम्भावना इसी बात की है, यदि परिस्थिति गम्भीर है कि विधान-मण्डल उसका समर्थन करेगा। यह व्यवस्था इसलिये की जा रही है कि उद्घोषणा को सदस्यों का समर्थन प्राप्त हो जाये जिन्हें जनता की ओर से बोलने का अधिकार प्राप्त है। और अगर

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

विधान-मण्डल उसका समर्थन नहीं करता है तो विधान-मण्डल के समवेत होने से तीन दिन के अंदर वह उद्घोषणा स्वतः समाप्त हो जायेगी और प्रवर्तन में न रह जायेगी। इस अनुच्छेद में कहीं भी कोई त्रुटि नहीं है और जिस रूप में यह यहां पेश किया गया है उसी रूप में हमें इसे स्वीकार करना चाहिये।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** अध्यक्ष महोदय, मेरी समझ से यह मसला बड़ा गम्भीर और महत्वपूर्ण है। इसमें शक नहीं कि आपात की स्थिति के लिये जबकि समस्त देश में या उसके किसी विशेष भाग में कोई संकट उपस्थित हो गया हो, राष्ट्रपति को बड़ी व्यापक शक्तियां प्राप्त रहनी चाहिएं। पर यह स्वीकार करते हुये भी कि देश की रक्षा के लिये राष्ट्रपति को व्यापक अधिकार प्राप्त रहने चाहिये, मैं यह कहूंगा कि उसके साथ ही जनता को भी राष्ट्रपति को प्रदत्त शक्तियों के मुकाबिले में कुछ न कुछ संरक्षण प्राप्त होने चाहिये। माननीय मित्र श्री कामत के संशोधन को मैंने पढ़ा है जिसमें कहा गया है कि जब तक कि वस्तुतः युद्ध शुरू न हो जाये या आभ्यंतरिक अशान्ति उत्पन्न न हो जाये, आपात की उद्घोषणा न निकाली जायेगी। मैं उनके मन्तव्य को अच्छी तरह समझ रहा हूं। देश में संकट आने की आशंका मात्र पर अगर उद्घोषणा निकाली जाती है तो इसमें खतरा है। मैं तो कहूंगा कि देश को इस समय भी आप संकट में समझ सकते हैं। कोई विदेशी शक्ति, हो सकता है इस पर आक्रमण कर दे। हम यह सुन ही रहे हैं कि देश में आन्तरिक अशान्ति का डर है। किन्तु केवल इस आधार पर कि देश संकटग्रस्त प्रतीत होता है और राष्ट्रपति को उसका समाधान हो जाता है कि देश पर संकट आने की आशंका है, आपात की उद्घोषणा का निकाला जाना ठीक नहीं कहा जा सकता है। इसलिये मेरा सुझाव है कि इस अनुच्छेद में कुछ न कुछ संरक्षण मूलक व्यवस्था अवश्य रखी जानी चाहिये और इस अनुच्छेद पर हमें सावधानी के साथ पुनर्विचार करना चाहिये। अनुच्छेद का जो वर्तमान स्वरूप है इसमें मुझे आशंका है कि जनता को स्वतन्त्रता सम्भवतः राष्ट्रपति के हाथों सुरक्षित न रह पाये। इसलिये मैं माननीय मित्र श्री कामत के संशोधन का—संशोधन नं. 154 का—समर्थन करता हूं। राष्ट्रपति को यह असाधारण अधिकार देने के तो मैं इतना पक्ष में हूं कि मैं यहां तक तैयार हूं कि अगर विधान-मण्डल सत्र में हो तो भी राष्ट्रपति को उद्घोषणा निकालने की शक्ति होनी चाहिये। मान लीजिये, देश पर किसी विदेशी शक्ति का आक्रमण हो जाता है और विधान-मण्डल सत्र में है। विधान-मण्डल का कोई कानून बनाने में और पास करने में कुछ न कुछ समय लगेगा पर राष्ट्रपति तो फौरन उद्घोषणा निकाल सकता है, उसे विलम्ब न लगेगा। इसलिये विधान-मण्डल के सत्र में होने पर भी राष्ट्रपति को यह शक्ति प्राप्त करनी चाहिये। वास्तविक संकट की अवस्था में यही एकमात्र हमारे उपाय हैं। और दूसरा रास्ता नहीं है। आखिर कुछ न कुछ व्यवस्था संकट के समय करनी ही पड़ेगी। अगर यह शक्ति राष्ट्रपति को नहीं प्राप्त रहती है तो संकट के समय देश में अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है। हां, यह जरूर है कि विधान-सभा के सत्र में रहने पर यदि उद्घोषणा निकाली जाती है तो वह विधान-सभा के समक्ष जरूर रखी जायेगी और फौरन रखी जायेगी ताकि यह मालूम हो जाये कि विधान सभा उससे सहमत है या नहीं। किन्तु यदि विधान-मण्डल की बैठक न हो रही हो तो उस समय मैं यह कहूंगा कि फौरन उसकी बैठक बुलाई जानी चाहिये

और इसमें विलम्ब न लगना चाहिये। मैं नहीं चाहता कि उद्घोषणा दो, तीन या चार महीनों तक प्रवर्तन में रहे।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** एक जानकारी चाहता हूं, श्रीमान्। मान लीजिये कि देश की राजधानी पर किसी विदेशी शक्ति का कब्जा हो जाता है। उस सूरत में विधान मण्डल को कैसे और कहां आहूत किया जायेगा?

***श्री तजम्मुल हुसैनः** अगर दुर्भाग्य से इस राजधानी पर ही किसी बाहरी शक्ति का अधिकार हो जाता है तो उस सूरत में शायद राष्ट्रपति ही न रह जायेगा। फिर विधान-मण्डल के लिए तो आपका पूछना ही बेकार है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** राष्ट्रपति किसी अन्य स्थान पर चला जायेगा और वहां कार्य चलायेगा। द्वितीय विश्व-युद्ध में ऐसा कई देशों में हुआ है।

***श्री तजम्मुल हुसैनः** अस्तु, मुझे प्रसन्नता है कि राष्ट्रपति भाग सकता है और जैसाकि द्वितीय विश्व-युद्ध में हुआ जब रूस की राजधानी मास्को से और फ्रांस की राजधानी पैरिस से अन्यत्र हटाई गई, यहां भी वही किया जा सकता है। माननीय मित्र से मैं यह कह सकता हूं कि राष्ट्रपति की तरह विधान-मण्डल भी वहीं चला जायेगा जहां राष्ट्रपति गया है। अगर राष्ट्रपति भाग सकता है तो उसके पीछे-पीछे हम लोग भाग सकते हैं। हम उसको अकेला नहीं छोड़ेंगे। आखिर लोक सभा में जनता के प्रतिनिधि होंगे और यदि वही यह चाहते हैं कि देश रसातल को चला जाये तो ठीक है इसे रसातल को ही जाने दीजिये। आखिर जनता ही तो सर्वेसर्वा है।

आशा है माननीय मित्र को यह समाधान हो गया होगा कि जनता के हित में यह आवश्यक है कि उद्घोषणा के निकाले जाते ही फौरन विधान-मण्डल को आहूत किया जाये।

अब श्रीमान्, माननीय मित्र श्री कामत के दूसरे संशोधन को—संशोधन नं. 147 को—लेता हूं जिसमें यह कहा गया है, उद्घोषणा मंत्रियों की राय पर ही निकाली जाये। मैं यही मानता हूं कि राष्ट्रपति सदा मंत्रियों की राय के अनुसार ही चलेगा और कभी भी उनकी राय के खिलाफ न जायेगा। पर मैं नहीं समझता कि उसका स्पष्ट उल्लेख संविधान में हो जाना चाहिये कि राष्ट्रपति मंत्रियों की राय मानने के लिए बाध्य है। अवश्य ही राष्ट्रपति को जनता ही मनोनीत करेगी पर मंत्रिपरिषद् में वह व्यक्ति होंगे जो जनता के वास्तविक प्रतिनिधि होंगे। अगर मंत्रिपरिषद् के सदस्य राष्ट्रपति को कोई काम करने की मंत्रणा देते हैं तो उनकी मंत्रणा पर चलना उसके लिये अनिवार्य होगा। इसलिये इस तरह के मामले में, जो मेरी समझ से बहुत ही गम्भीर और महत्वपूर्ण मामला है, संविधान में यह व्यवस्था लिपिबद्ध रहनी चाहिये कि उद्घोषणा निकालने से पहले राष्ट्रपति, प्रधान-मंत्री और उसके मंत्रिमण्डल से जरूर राय ले लेगा।

अब सवाल यह आता है कि अगर देश के किसी भाग में आन्तरिक अशान्ति या बाह्य आक्रमण होता है तो उस सूरत में क्या होगा? मैं सदा ही इस पक्ष

[श्री तजम्मुल हुसैन]

में रहा हूं कि केन्द्र खूब सुदृढ़ होना चाहिये और सभी इकाइयों पर उसका पूरा नियंत्रण रहना चाहिये। अगर किसी इकाई में आन्तरिक अशान्ति पैदा हो जाती है तो वह केन्द्र से सहायता लेने के लिए बाध्य है। राष्ट्रपति उद्घोषणा निकालेगा किसी इकाई के सम्बन्ध में। मैं इसे मानता हूं जैसाकि अभी श्री करीमुद्दीन ने कहा है कि संकटग्रस्त किसी इकाई के सम्बन्ध में आपात की उद्घोषणा निकालने में कुछ खतरा जरूर है। उन्होंने उदाहरण के लिए बंगाल का उल्लेख किया है। मैं भी बंगाल या अन्य किसी इकाई का उदाहरण के लिए उल्लेख कर सकता हूं। इस समय सभी प्रान्तों में वही दल शासनारूढ़ है जो केन्द्र में अधिकारारूढ़ है। दूसरे दल भी हैं जो अधिकारारूढ़ होने की कोशिश कर रहे हैं। कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट पार्टियां इसके लिए कोशिश कर रही हैं। चाहे जो दल अधिकारारूढ़ हो इससे प्रस्तुत मसले का कोई सम्बन्ध नहीं है। एक समय आयेगा जब कम्युनिस्ट शासनारूढ़ हो जायेंगे। आखिर कांग्रेस सदा ही अधिकारारूढ़ तो न रह पायेगी। कोई भी राजनैतिक दल सदा अधिकार में नहीं बना रहता है। यहां भी वैसा ही होगा जैसाकि इंग्लैण्ड में हुआ जहां अनुदार दल, उदार दल और श्रमिक दल का समय-समय पर शासन रहा। मान लीजिये, भारत में कम्युनिस्ट पार्टी शासनारूढ़ है और कांग्रेस दल पुनः शासन में आने का प्रयास करता है और वह किसी भी प्रान्त या राज्य में कहीं अधिकार में नहीं है, कम्युनिस्ट पार्टी विरोधी दल को कुचल डालना चाहती है। वह राष्ट्रपति से कह सकती है कि उनके प्रदेश में संकट की कहीं आशंका है और उसको सहायता करनी होगी। इसलिये मैं कहता हूं कि संरक्षण के लिए कुछ न कुछ व्यवस्था हमें अवश्य रखनी चाहिये। इस प्रावधान के रखने में यही एक खतरा है। बंगाल में ही देख लीजिये, आज क्या हो रहा है। जो भी दल कहीं हो उसे आपको पूरी स्वतन्त्रता देनी होगी। आगामी चुनाव के मौके पर विरोधी पक्ष को, उसके एजेण्टों को तथा अन्य लोगों को भी जो कांग्रेस शासन की आलोचना करते हैं हमें पूरी स्वतन्त्रता देनी होगी। जब तक कि ऐसा नहीं होता है उस देश को स्वतन्त्र नहीं समझा जा सकता है। मैं इसे मंजूर करता हूं, जैसा कि मैंने पहले कहा है कि राष्ट्रपति को शक्ति अवश्य प्राप्त रहनी चाहिये, पर मैं यह चाहता हूं कि माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर इस मसले पर उन बातों को ध्यान में रखते हुये पुनर्विचार करें जोकि मैंने यहां सुझाई हैं, और यह देखें कि जनता के हित संरक्षित रहें। उनको यह देखना चाहिये कि उद्घोषणा अधिकार में आने के लिए प्रयास करने वाली पार्टी को कुचलने के लिए न निकाली जाये।

***श्री महावीर त्यागीः** अध्यक्ष महोदय, डॉ. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन का समर्थन करने के लिए मैं खड़ा हो रहा हूं। मेरा समर्थन कुछ कमजोर जरूर होगा क्योंकि मेरी राय में खुद संशोधन ही कमजोर है। मैं चाहता हूं कि जैसे भी हो केन्द्र सब तरह से मजबूत हो। यह एक खण्ड है जो केन्द्र और विभिन्न इकाइयों को एक स्थायी सूत्र में बांधे रहेगा। एकमात्र दूसरी व्यवस्था जो इस सम्बन्ध को कायम रखेगी, वह है वह व्यवस्था जिसके अधीन इकाइयों से कर संग्रहीत किये जाते हैं या उन्हें अनुदान दिये जाते हैं। और दूसरी कोई प्रसंविदा या समझौता तो केन्द्र और इकाइयों के बीच है नहीं, जिस पर उनका सम्बन्ध बना रहे। लोकतन्त्र के सम्बन्ध में हमारी जो कल्पना है वह पाश्चात्य कल्पना से सर्वथा भिन्न है। लोकतन्त्र का एक कोई खास ढांचा हमारे लिये फिर नहीं हो सकता है। जिस तरह कि मिस्टर एटली का टोप हमारे प्रधानमंत्री के सर पर

फिट नहीं बैठ सकता है और न हमारी गांधी टोपी मिस्टर एटली के सर पर ठीक बैठ सकती है, उसी तरह लोकतन्त्र का कोई बाहर का खास ढांचा हमारे लिये फिट नहीं हो सकता है और न हमारा ढांचा पाश्चात्य देशों को फिट हो सकता है। लोकतन्त्र तो कल्पना रूपी एक पौधा है जिसे हम बाहर कहीं से लाकर यहां अपने देश में न लगा सकते हैं और न वह पल्लवित है पुष्पित ही हो सकता है। हमारा जो भूगोल है, इतिहास है और हमारी जो मनोदशा है, इन सभी के अनुरूप हमारा लोकतन्त्र होना चाहिये। अपने देश, अपनी जनता, अपने अर्थशास्त्री, अपनी सेना, अपनी भौगोलिक, सामरिक स्थिति तथा अन्य इसी तरह की बातों को ध्यान में रखते हुये ही हमें अपने लोकतन्त्र की रचना करनी होगी और उसे इन सबके अनुरूप रखना होगा। हां, लोकतन्त्र में ऐसी एक बात जरूर है जो सभी देशों के लिये समान रूप से लागू होती है और वह यह है कि प्रशासन जनता की इच्छा के अनुसार चलना चाहिये। जनता की इच्छा सर्वोपरि रहनी चाहिये और जब तक जनता की इच्छा के अनुसार प्रशासन-व्यवस्था चलाई जायेगी, लोकतन्त्र ठीक से चलेगा, उसकी गति में कोई बाधा न पहुंचेगी। प्रस्तुत प्रसंग में यदि अशान्ति को यों ही रहने दिया जाता है और केन्द्र को उसमें हस्तक्षेप की शक्ति नहीं दी जाती है तो उसका परिणाम यह होगा कि लोगों में विघटन की प्रवृत्ति पैदा हो जायेगी। अगर ऐसी कोई पार्टी है जो हिंसा का सिद्धान्त मानती है और केन्द्र के विरुद्ध किसी इकाई में विद्रोह खड़ा हो जाता है तो उस अवस्था में राष्ट्रपति की यह आपात शक्ति उपयोगी सिद्ध होगी। युद्ध न होने पर शान्ति की अवस्था में भी अगर किसी इकाई की हुकूमत केन्द्र के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर देती है तो मेरी समझ से ऐसी स्थिति के निराकरण के लिये यहां कुछ न कुछ प्रावधान अवश्य होना चाहिये। अगर किसी राज्य की सरकार केन्द्र से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहती है और संघ से बाहर हो जाना चाहती है या किसी पड़ौसी प्रान्त या किसी बाहरी देश से मिलकर केन्द्र के विरुद्ध कुछ करती है तो आपात-शक्तियों का प्रयोग करना ही होगा। पर मुझे खेद है कि डॉ. अम्बेडकर ने, या तो यहां के उग्रपंथी दोस्तों के डर से या मंत्रिमंडल के अपने कुछ साथियों के डर से, इस प्रावधान को कुछ ऐसा बना दिया है जो उपरोक्त दृष्टिकोण से लचर प्रतीत होता है।

अनुच्छेद के जो शब्द हैं, उनमें एक कानूनी बात दिखाई पड़ती है और आशा है पण्डित पंत जैसे धुरन्धर वकील जो यहां मौजूद हैं, इस पर गौर करेंगे और यह देखेंगे कि इनमें मेरी इच्छाओं की पूर्ति की भी गुंजाइश निकलती है या नहीं। अनुच्छेद की भाषा यह है:

> "यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाये कि गम्भीर आपात विद्यमान है, जिससे कि युद्ध या बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशान्ति से भारत या उसके राज्य-क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा संकट में है, तो वह उद्घोषणा द्वारा इस आशय की घोषणा कर सकेगा।"

युद्ध, बाह्य आक्रमण अथवा आभ्यन्तरिक अशान्ति केवल इन तीन का जो यहां उल्लेख किया गया है वह केवल समझाने के लिए। इसका मतलब यह नहीं है कि यदि और किसी बात के कारण देश की सुरक्षा संकट में होती है तो इस अनुच्छेद का प्रयोग ही न किया जायेगा। अनुच्छेद की मुख्य शर्त यह है कि राष्ट्रपति को समाधान हो जाना चाहिये कि गम्भीर आपात विद्यमान है और ज्यों ही राष्ट्रपति

[श्री महावीर त्यागी]

को इसका समाधान हो जाता है यह अनुच्छेद प्रयोग में ला दिया जायेगा। सुरक्षा सम्बन्धी संकट के बारे में जिन तीन बातों का यहां उल्लेख किया गया है केवल उन्हीं तक अनुच्छेद का प्रयोग सीमित नहीं रहेगा और अगर केवल इन्हीं तीन बातों को लेकर संकट पैदा होने में ही अनुच्छेद लागू होता है तो डॉ. अम्बेडकर को यह बात यहां साफ-साफ बता देनी चाहिये कि उन्हीं तीन आपात की अवस्थाओं में अनुच्छेद लागू होगा। आपात के तो और भी कारण हो सकते हैं। मसलन किसी राज्य में विद्रोह का होना भी आपात है। मैं तो यही आशा करता हूं कि इस अनुच्छेद में अन्य आपातों को भी शामिल करने की गुंजाइश है। यह बात यहां साफ हो जानी चाहिये और मैं चाहता हूं कि डॉ. अम्बेडकर इसका स्पष्टीकरण कर दें। मैं यह चाहता हूं कि वह यहां यह स्पष्ट कर दें कि केवल उन्हीं तीन आपातों तक ही अनुच्छेद सीमित न रहेगा बल्कि अन्य आपात की दशा में भी यह लागू होगा। आखिर अन्य आपात क्यों नहीं इसमें शामिल समझे जा सकते हैं? इस अनुच्छेद के विरुद्ध हमें कोई आपत्ति ही न होनी चाहिये क्योंकि इससे जनता के लोकतन्त्रीय अधिकारों की रक्षा होती है न कि उनका अपहरण होता है। इससे जनता को कोई क्षति नहीं पहुंचती है। राष्ट्रपति अगर इस अनुच्छेद के अधीन कोई कार्रवाई करता है तो राज्य की सुरक्षा के लिये ही करेगा। आखिर राज्य क्या चीज है? जनता के लोकतन्त्रीय अधिकारों के समवाय को ही राज्य कहते हैं और इन्हीं के लिए राज्य का अस्तित्व होता है। फिर जब राज्य, का अस्तित्व ही यदि संकट में पड़ जाता है तो केन्द्र का यह कर्तव्य है कि वह देखे कि राज्य, जो कि उसके अधीनस्थ प्रत्येक नागरिक के लोकतन्त्रीय अधिकारों की प्रत्याभूति का एक प्रतीक है, सुरक्षित रहे। ऐसी स्थिति में केन्द्रीय शासन अगर हस्तक्षेप करता है तो ऐसा वह केवल इसीलिये करता है कि व्यक्ति के ये अधिकार सुरक्षित रहें।

फिर राष्ट्रपति एक ऐसा व्यक्ति होगा जिसे समस्त भारत चुनेगा। वह जनता के अधिकारों का तथा उनके स्वातन्त्र्य का एकमात्र रक्षक होगा। वह एक ऐसा व्यक्ति होगा जिसमें समस्त देश का विश्वास निहित रहेगा। इसलिये राष्ट्रपति जो आपात की उद्घोषणा करेगा वह एक ऐसा व्यक्ति होगा जो हमारे लोकतन्त्र का प्रधानतम प्रतीक होगा। ऐसी अवस्था में हम यह आशंका कैसे करते हैं कि हमारा लोकतन्त्र खतरे में पड़ जायेगा? मेरी समझ में तो यह बात नहीं आती है। जहां कहीं भी राष्ट्रपति उल्लेख है उससे केन्द्रीय शासन ही अभिप्रेत है। यहां राष्ट्रपति शब्द में यह बात भी शामिल है कि केन्द्रीय शासन की राय जरूर ले ली जायेगी। इसलिये वस्तुतः यह केन्द्रीय शासन ही होगा जो आपात की उद्घोषणा करेगा। और फिर प्रशासन सम्बन्धी ये शक्तियां हम गवर्नर-जनरल, गवर्नर या भारतमंत्री अथवा उसके द्वारा मनोनीत प्राधिकारी जैसे पुराने जमाने के किसी डिक्टेटर में नहीं निहित कर रहे हैं। राष्ट्रपति का पद तो ऐसा पद है जिस पर कोई निर्वाचित व्यक्ति ही बिठाया जायेगा। राष्ट्रपति में उच्चतम लोकतंत्रीय प्रतिष्ठा एवं सम्मान निहित रहेगा और वह जो उद्घोषणा करेगा वह उसकी और मंत्रिमण्डल दोनों की उद्घोषणा समझी जायेगी। इसलिये केन्द्रीय शासन को आपात-शक्तियों से सुसज्जित करने पर अगर हम नहीं राजी होते हैं तो मुझे यह आशंका है कि अपने देश को जिसकी

प्रतिष्ठा अभी तक बहुत ऊंची नहीं उठ पाई है, जिसकी शक्ति अभी प्रबल नहीं है और जिसके दोनों तरफ के पड़ौसी राष्ट्र शत्रु हैं, शीघ्र ही इसके लिये पछताना पड़ सकता है। हमें यह देखना होगा कि सारा राष्ट्र अपनी समस्याओं का सामना एक होकर करे। यही एक अनुच्छेद है जो समस्त देश को एक सूत्र में बांधता है और वस्तुतः हम जो अपने संघ का निर्माण कर रहे हैं उसके पीछे इसी अनुच्छेद का बल है। आखिर संघ और विभिन्न इकाइयों में किसी प्रसंविदा के आधार पर कोई समझौता तो हुआ नहीं है। यह अनुच्छेद एक ऐसी चीज है तो सब इकाइयों को एक सूत्र में बांधता है और किसी भी इकाई को इससे रोकता है कि उसके नागरिक ऐसा कोई काम न करें जो समस्त देश के हित के प्रतिकूल जाता हो। अगर ऐसा काम करने की प्रवृत्ति कहीं पैदा होती है तो उसे दबाना होगा। लोकतन्त्र में तो हमें एक साथ रहना होगा और एक साथ चलना होगा। अगर शरीर की एक अंगुली भी काटी जाती है तो सारे शरीर को वेदना पहुंचती है। इसी तरह अपना लोकतन्त्रीय राज्य भी एक शरीर के ही रूप में है। मैं भारत को एक इकाई मानता हूं और अगर उसके किसी भी भाग में कहीं कोई बखेड़ा पैदा होता है, तो उसके कारण समस्त देश को कष्ट भोगना पड़ेगा। इसलिये केन्द्र का यह देखना कर्तव्य है कि देश में सर्वत्र शान्ति रहे। यदि कहीं भी शान्ति खतरे में पड़ती हो तो केन्द्र को फौरन कार्रवाई करनी चाहिये। अनुच्छेद का खण्ड (3) जिसका कि यहां कई मित्रों ने विरोध किया है, वह भी एक महत्वपूर्ण खण्ड हैं, श्रीमान्। अशान्ति उत्पन्न हो जाने पर आदेश निकालने में कोई लाभ नहीं है। आपात के प्रारम्भ के पहले ही आपात-शक्तियों का प्रयोग किया जाना चाहिये। इसलिये अनुच्छेद का खण्ड (3) भी एक बहुत आवश्यक खण्ड है, क्योंकि इससे यह शक्ति प्राप्त होती है कि संकट आने से बहुत पहले ही हम कोई कार्रवाई कर सकते हैं। इसलिये मैं इस खण्ड का हार्दिक समर्थन करता हूं। मेरे मित्र तो यह समझते हैं कि यह खण्ड एक बड़ा ही प्रतिक्रियावादी प्रावधान है, पर मैं उनसे सहमत नहीं हूं। हम सबको इसका समर्थन करना चाहिये। मैं केवल इतना ही चाहता हूं कि अनुच्छेद में आपात के बारे में जो तीन बातों का उल्लेख किया गया है उनके साथ और भी कई तरह के आपात वहां लिपिबद्ध कर दिये जायें। जिन आपातों के लिये यहां व्यवस्था की गई है उनके अलावा और अन्य आपात भी हो सकते हैं। इन शब्दों के साथ में अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री जगत नारायण लाल** (बिहार : जनरल): डॉ. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन को अपना हार्दिक समर्थन देने के लिए मैं खड़ा हो रहा हूं, श्रीमान्। मैं समझता हूं कि इस बात से सभी सहमत होंगे कि आपात-शक्ति के सम्बन्ध में जो यह प्रावधान रखा जा रहा है वह बड़ा ही आवश्यक है। जो लोग देश की स्थिति को देखते आ रहे हैं और खास करके स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद आज जो देश में स्थिति है उसको जो ध्यान से देख रहे हैं, वह अवश्य ही इससे सहमत होंगे कि हमारे देश में आपात-शक्तियों की जितनी आवश्यकता आज है, उतनी पहले कभी भी नहीं थी। कई मित्रों ने इस अनुच्छेद की तुलना भारत-शासन-अधिनियम की धारा 98 से की है: इस प्रावधान की तुलना धारा 98 से कभी नहीं की जा सकती है। धारा 98 की रचना की थी एक विदेशी हुकूमत ने और इसलिये कि जो भी थोड़ा बहुत अधिकार हमें प्राप्त था वह छिन जाये। और प्रस्तुत प्रावधान की व्यवस्था हम इसलिये कर रहे हैं कि राष्ट्रपति को यह शक्ति प्राप्त रहे कि राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य को वह सुरक्षित रख सके। जो स्वतंत्रता हमने

[श्री जगत नारायण लाल]

प्राप्त की है उसकी रक्षा करना बड़ा जरूरी है। माननीय मित्र श्री त्यागी ने, जिन्होंने कि इस अनुच्छेद का समर्थन किया है, अनुच्छेद के प्रस्तावक का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया है कि संकट के बारे में जिन तीन बातों का उल्लेख किया गया है उतना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि अगर अन्य किसी बात के कारण संकट की आशंका हो तो वहां भी यह अनुच्छेद लागू होना चाहिये। इस सम्बन्ध में मैं यह कहूंगा कि यहां जिन तीन बातों का उल्लेख किया गया है वह बहुत ही व्यापक है और उनके अन्दर सभी तरह के आपात आ जाते हैं। युद्ध के कारण अगर देश की सुरक्षा संकट में पड़ती है तो आपात की उद्घोषणा की जा सकती है। और अगर बाह्य आक्रमण की वजह से देश की सुरक्षा को खतरा है तो भी आयात की उद्घोषणा की जा सकेगी और फिर आभ्यन्तरिक अशान्ति के कारण यदि देश की सुरक्षा खतरे में पड़ती है तो भी आपात की उद्घोषणा की जा सकेगी। बाह्य आक्रमण तथा आन्तरिक अशान्ति ये दोनों ही इतने व्यापक शब्द हैं कि उनके अन्दर और सभी कल्पनीय आपात शामिल किये जो सकते हैं। इसलिये मुझे तो कोई कारण नहीं दिखाई देता कि आपात सम्बन्धी अन्य और कई बातें यहां लिपिबद्ध की जायें। मसौदा-समिति...

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** इसे निकाल ही क्यों न दिया जाये?

***श्री जगत नारायण लाल:** निकाल देने से तो अनुच्छेद की परिधि और भी विस्तृत हो जायेगी। मैं नहीं चाहता कि इससे अधिक शक्ति प्रदत्त की जाये। मसौदा-समिति ने इस प्रावधान द्वारा मूल अनुच्छेद में काफी सुधार कर दिया है। उद्घोषणा को 6 महीने तक प्रवर्तन में रखने के बजाय अब उन्होंने उसके प्रवर्तन की अवधि केवल दो माह कर दी है। मसौदा-समिति ने यहां एक यह प्रावधान और भी बढ़ा दिया है कि लोक सभा का यदि विघटन हो चुका है तो उस समय जबकि वह पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, उससे तीन दिन की समाप्ति पर उद्घोषणा प्रवर्तन में न रहेगी जब तक कि इस अवधि के अन्दर विधान-मण्डल उसका अनुमोदन न कर दे। मेरी समझ से ये प्रावधान पर्याप्त हैं। यदि इन प्रावधानों के अधीन भी राष्ट्रपति को हम आपात-शक्ति देने पर तैयार नहीं हैं तो फिर उसे कोई भी आपात-शक्ति देने की आवश्यकता ही क्या है? जैसाकि एक पूर्ववक्ता ने कहा है, सर्वथा सम्भावना उसी बात की है कि उद्घोषणा मंत्रि-मण्डल की राय से ही निकाली जायेगी। ऐसी स्थिति के लिए मैं तो यहां तक प्रस्तुत हूं कि अगर मंत्रि-मण्डल भी आपात की विद्यमानता को नहीं मानता है और स्थिति के अनुरूप काम नहीं करता है तो राष्ट्रपति को ही, जिसमें समस्त राष्ट्र का विश्वास निहित है, यह शक्ति प्राप्त रहनी चाहिये।

जो कुछ कह चुका हूं उससे ज्यादा मैं और कुछ नहीं कहना चाहता। डॉ. अम्बेडकर के संशोधन को मैं हार्दिक समर्थन देता हूं। आशा है, सभा इसे सर्वसम्मति से स्वीकार करेगी।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, इस मौके पर जो मैं बहस-मुबाहिसे में हस्तक्षेप करने के लिए खड़ा हो रहा हूं वह केवल इस कारण से कि मैं नहीं चाहता कि देश-वासियों की यह धारणा हो कि हम लोग संविधान में कुछ

ऐसी बात रख रहे हैं जो असंवैधानिक है, या कुछ ऐसी बात रख रहे हैं जो संविधान को ही तोड़ने के साधन के लिये रखी जा रही है या कुछ ऐसी बातें रख रहे हैं जिनसे संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिकों के सभी अधिकारों और विशेषाधिकारों का अभिशून्यन हो जाता है, या यह कि केन्द्रीय कार्यपालिका के हाथ में ही हम सारी शक्तियां दे रहे हैं जो अन्ततोगत्वा इस देश में डिक्टेटर का रूप धारण कर लेगी।

मैं उन आदमियों में हूं, श्रीमान् जिनका यह विश्वास है कि अगर ऐसा संविधान बनाया जा सके जिसमें कार्यपालिका के लिए कोई भी ऐसी शक्ति प्रवाहित न की गई हो, जिसके द्वारा वह कभी भी नागरिकों के अधिकारों का न्यूनन कर सके या ऐसी कोई बात कर सके जो असांवैधानिक अथवा अति सांवैधानिक हो तो बहुत उत्तम है। माननीय मित्र श्री कामत की प्रवाहपूर्ण वक्तृता को मैंने बड़े ध्यान से सुना है जिसमें उन्होंने समूचे भाग 11 के सम्बन्ध में आपत्ति व्यक्त की है और यह पूछा है कि क्या दुनिया के और किसी भी संविधान में ऐसे प्रावधान कहीं रखे गये हैं? अवश्य ही उन्होंने बड़ी बुद्धिमानी की, जो वाइमर संविधान को एक अपवाद बतलाया जिसके अनुच्छेद 48 में कुछ ऐसे ही प्रावधान हैं, जैसे कि प्रस्तुत अनुच्छेद में रखे गये हैं। अवश्य ही आज के जमाने में जिन्हें संविधान बनाना है वे अगर संविधान की रचना में उन कठिनाइयों का ख्याल नहीं रखते जिनका आज प्रत्येक देश में बाहुल्य है तो मैं कहूंगा कि वे अपने कर्तव्य से च्युत होते हैं। आज न केवल युद्ध की, अघोषित युद्ध की और आन्तरिक अशान्ति की ही आशंका है बल्कि और भी अन्य दूसरी बात बहुत सी विपत्तियां हैं जो बहुत सम्भव है उठ खड़ी हों; कुछ तो उस कारण से कि सभी देशों में एक शोभनीय आर्थिक अवस्था वर्तमान है, सर्वत्र आर्थिक कुव्यवस्था फैली हुई है और कुछ इस कारण से कि आज विश्व में कुछ ऐसी शक्तियां वर्तमान हैं जो इस आर्थिक कुव्यवस्था को अपनी विनाशकारी राजनीतिक कार्रवाइयों का आधार बनाना चाहती हैं जिसका फल यह होगा कि सर्वत्र आर्थिक अवस्था आज से भी खराब हो जायेगी। इसलिये संविधान के रचयिता यदि संरक्षणों की व्यवस्था नहीं करते हैं, ताकि आपात की स्थिति आने पर संविधान की रक्षा की जा सके, तो मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि वे गम्भीर कर्तव्यच्युति के दोषी होंगे। यही कारण है, श्रीमान्, जिसके लिये हम लोगों ने संविधान में 'आपात-प्रावधान' शीर्षक भाग 11 को स्थान दिया है। यह बात नहीं है कि मसौदा-समिति ने केवल इतना ही किया है कि भारत-शासन-अधिनियम 1935 की धारा 102 और 126क के शब्दों को उठाकर यहां इस अनुच्छेद में रख भर दिया है। मसौदा-समिति ने खूब सावधानी के साथ गम्भीरतापूर्वक सोच विचार कर इस बात की कोशिश की है कि शासन को इसके लिए पर्याप्त शक्ति प्राप्त रहे कि वह आपात-स्थिति का सामना कर सके और ऐसी आपात स्थिति का सामना कर सके, जिससे इस संविधान के ही समाप्त होने का संकट पैदा हो जाये और देश ऐसे शासन के अधीन आ जाये जो सर्वथा असांवैधानिक हो। पर साथ ही उन्होंने इस बात के लिये पर्याप्त संरक्षण रखे हैं कि जनमत की सुनवाई हो और मैं कहूंगा कि जनमत को प्राधान्य अवश्य प्राप्त रहेगा चाहे इन आपात प्रावधानों के अधीन हम कैसी भी अवस्था में होकर क्यों न अपने प्रकार्य सम्पादित करें।

इस मसले का और एक पहलू भी है जिसको संविधान के आलोचकों को ध्यान में रखना चाहिये। यह एक लिपिबद्ध संविधान है, इसलिये ऐसे संविधान में

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

जो दोष होते हैं वह इसमें भी हैं। यदि हम इस सम्भावना की कल्पना नहीं करते हैं कि आगे चलकर कभी अशान्ति उत्पन्न हो सकती है जिससे संविधान के ही भंग हो जाने का खतरा हो सकता है और ऐसी सम्भाव्य स्थिति से बचने के लिए व्यवस्था नहीं करते हैं, तो उसका परिणाम यह होगा कि आगे चलकर जो शक्ति भी शासनारूढ़ रहेगी वह आपात की स्थिति में कुछ भी करने में अपने को असमर्थ पायेगी, क्योंकि आपात के निराकरण के लिये उसे कोई अधिकार तो प्राप्त न रहेंगे। माननीय मित्र श्री कामत और प्रो. शाह दोनों से मैं आग्रह करूंगा कि वे अमेरिकन संविधान के इतिहास का अवलोकन करें और उसके उस अंश पर कुछ समय खर्च करके गौर से विचार करें जिसके द्वारा प्रेसिडेंट को सर्वोच्च सैनिक अधिकारी यानी कमाण्डर-इन-चीफ की शक्तियां प्रदत्त की गई हैं। मैं इन लोगों से उसका भी अनुरोध करूंगा कि वह 1861 से आगे के वहां के इतिहास को पढ़ें जबकि उनका समस्त देश और सारा संविधान—जिसने कि हमारे लिये एक आदर्श का काम दिया है—वह उसी कारण से सुरक्षित रह सका कि प्रेसिडेंट को कमाण्डर इन चीफ की शक्तियों के प्राप्त हो जाने के कारण जो कर्तव्य, दायित्व और अधिकार प्राप्त होते थे उनका बड़ा ही व्यापक अर्थ लगाया जा सकता था। इस खण्ड विशेष पर, जिसके द्वारा प्रेसिडेंट को सर्वोच्च सैनिक अधिकारी की शक्तियां प्रदत्त की गई थीं ताकि वह विधि और व्यवस्था को बनाये रख सके, आक्रमण का सामना कर सके और युद्ध के समय देश का नेतृत्व कर सके, एक विस्तृत साहित्य का निर्माण हो चुका है। दरअसल बाद के एक मौके पर, जबकि अमेरिका प्रथम विश्व युद्ध में शामिल हुआ था, राष्ट्रपति विलसन, देश की समूची अर्थव्यवस्था को युद्ध सम्बन्धी साधनों की ओर लगाने में जो समर्थ हो सके थे, वह केवल इन्हीं शक्तियों के कारण, यद्यपि इनका प्रयोग एक भिन्न ढंग से किया गया था और जो प्रणाली अपनाई गई थी वह भी भिन्न ही थी। फिर मैं पूछता हूं कि इतना अनुभव सामने रहने पर भी हम क्यों न स्पष्ट शब्दों में संविधान में ऐसे संरक्षण लिपिबद्ध कर दें जिनसे गम्भीर संकट के समय संविधान की रक्षा की जा सके? क्या यह बुद्धिमत्ता की बात है कि यहां खड़े होकर हम ओजस्वी वस्तृता द्वारा शौर्य प्रदर्शन करें और यह कहें:—

"संविधान में ऐसें प्रावधानों को रखने का प्रयास किया जा रहा है कि उनके फलस्वरूप असांवैधानिक कार्रवाइयों को सांवैधानिक बताया जा सके। इनसे राष्ट्रपति एक केन्द्रीय कार्य-पालिका को इतनी असीम शक्ति प्राप्त हो जाती है कि वे सर्वथा निरंकुश बन जायेंगे"। संविधान की रचना करने वालों को, ऐसे व्यक्तियों को शक्ति प्रदान करने में जो आगे चलकर कभी कुछ वर्षों बाद या दशाब्दियों के बाद पदारूढ़ होंगे और जिनके साथ उनका कोई भी सम्बन्ध न होगा, आखिर क्या प्रसन्नता मिल सकती है? उनको ऐसी असाधारण शक्तियों को प्रदत्त करने में संविधान रचयिताओं को क्या प्रयोजन हो सकता है? ऐसा तो वे केवल इसी विचार से कर रहे हैं कि अपना यह संविधान जिसकी हम रचना कर रहे हैं हर स्थिति में सदा सुरक्षित रहे। हो सकता है कि भाग 9 के प्रावधानों के अधीन प्रकार्य करते हुये राष्ट्रपति अथवा कार्यपालिका एक तरह की सांवैधानिक तानाशाही का—यह पद संहिता आजकल बहुत प्रचलित हो चली है—प्रयोग करें। किन्तु जैसाकि मैं पहले कह चुका हूं, संविधान की रक्षा के लिये ऐसी तानाशाही बड़ी आवश्यक है और यह एक

कठोर सत्य है जिससे हम भाग नहीं सकते हैं; जब तक कि दुनिया का स्वरूप वह रहता है जो कि आज है। आज सर्वत्र युद्ध की, आक्रमण की और आन्तरिक अशांति की आशंका वर्तमान है और इनके पैदा होने के कई कारण हैं और प्रधान कारण है आर्थिक, जैसाकि मैं समझ पाता हूं। जो मित्र यहां इन प्रावधानों की आलोचना कर रहे हैं, जो यहां यह कह रहे हैं कि संविधान के रचयिताओं का तो अभिप्राय यह है कि देश को इस संविधान द्वारा, जिसमें कार्यपालिका को इतनी प्रचुर शक्ति दी गई है कि वह तानाशाही का रूप ग्रहण कर सकती है, सर्वथा जकड़ दिया जाये और जो अपनी इन वक्तृताओं से बाहर के लोगों को यह जताना चाहते हैं कि वे ही जनता की स्वतन्त्रता के सबसे बड़े हिमायती हैं, उनसे मैं यह कहूंगा कि वह इस बात पर विचार करें कि आखिर और अन्य संविधानों में, खास तौर पर फ्रांस के संविधान में सन् 1813 से लेकर 1853 तक क्यों ऐसे प्रावधान रखे गये हैं, जिनके द्वारा पूर्ण राज्याधिकार (State of seize) की उद्घोषणा का अधिकार दिया गया है? पूर्ण राज्याधिकार की घोषणा का प्रावधान शायद वैसा ही प्रावधान है जैसाकि वाइमार संविधान के अनुच्छेद 48 में सांवैधानिक तानाशाही का प्रावधान है। इंग्लैंड जैसा देश भी ऐसी आपात-शक्तियों के प्रयोग से सर्वथा स्वतन्त्र नहीं है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद इंग्लैंड ने Emergency Act of 1920 पास किया था जिसके द्वारा कार्यपालिका को इसकी पूर्ण शक्ति दे दी गई थी कि वह स्थिति का सामना जिस तरह चाहे कर सकती है तथा संसदीय स्वीकृति के तथा एक सीमित कालावधि के अधीन आपात की उद्घोषणा कर सकती है। दर-असल उक्त आपात-अधिनियम (Emergency Act) किसी बाहरी शत्रु का सामना करने के लिये नहीं बनाया गया था और न ऐसी शक्तियों का सामना करने के लिए बनाया गया था, जिससे संविधान के समाप्त होने या उलटने की आशंका हो, बल्कि उन गम्भीर आर्थिक परिणामों के निराकरण के लिए बनाया गया था जो शासन की निष्क्रियता से पैदा हो सकती थीं। इसी औचित्य के आधार पर इंग्लैण्ड जैसे देश ने Emergency Act of 1920 जैसे अधिनियम को पास किया था जो परिधि एवं व्यापकता की दृष्टि से ऐसे किसी भी अधिनियम से आगे था, जिसे यहां ब्रिटिश हुकूमत ने अपनी अमलदारी में पास किया हो। जो मित्र यहां इस प्रावधान को संविधान में स्थान देने के लिए हमारी आलोचना कर रहे हैं, उनसे मैं यह कहूंगा कि वे इतिहास पर दृष्टिपात करें। क्या सचमुच वे यही चाहते हैं कि हम संविधान में ऐसी व्यवस्था न करें जिससे वह रक्षित रह सके? प्रस्तुत आपात प्रावधान केवल इस उद्देश्य से रखा जा रहा है कि हमने संविधान-निर्माण में जो अपना इतना समय लगाया है और इतना जो श्रम किया है वह सब व्यर्थ न जाये और भविष्य में जो भी अधिकारारूढ़ रहें उनकी संविधान के रक्षा की पर्याप्त शक्ति प्राप्त रहे। जो अनुच्छेद इस समय विचाराधीन है उसकी भाषा के सम्बन्ध में मैं यह कहूंगा कि यह एक ऐसा मूलभूत प्रावधान है जिससे न केवल अनुच्छेद 276, 277, 279 और 280 के ही प्रावधान शासित होते हैं, बल्कि इससे कई दूसरे प्रावधान भी शासित होते हैं। इन अनुच्छेदों की रचना में इस बात का ख्याल रखा गया है कि जहां तक शक्य हो सके, शीघ्र संसद् को आहूत किया जाये और उसका अनुमोदन प्राप्त किया जाये। अनुच्छेद 276, 277, 278 और 280 में प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग तब तक नहीं किया जा सकता है, जब तक कि कार्यपालिका द्वारा की गई आरम्भिक कार्रवाई को संसद् की एक तरह से स्वीकृति न मिल जाये। आखिर इन प्रावधानों के द्वारा हम संसद् की बैठकों को

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

तो निलम्बित नहीं कर रहे हैं। संसद् को संविधान पर जो शक्तियां प्राप्त हैं उन्हें हम इन प्रावधानों के द्वारा नहीं निलम्बित कर रहे हैं। संसद् को सदा इसका अधिकार है कि वह कार्यपालिका को नियमानुसार चलने को कहे। यदि संसद् यह देखती है कि आपातविधियों के अधीन बनाये गये किसी भी प्रावधान के प्रवर्तन के सम्बन्ध में कार्यपालिका अपने अधिकार से आगे बढ़ गई है तो वह उसकी खबर ले सकती है। वह मंत्रिमण्डल को बरखास्त कर सकती है और उसके स्थान पर दूसरा मंत्रिमण्डल बिठा सकती है। इन प्रावधानों पर यदि आप गौर करें तो देखेंगे कि मसौदा-समिति ने इसका पूरा ख्याल रखा है कि संसद् की शक्ति अक्षुण्ण बनी रहे और जहां तक सम्भव हो बिना किसी विलम्ब के वह आहूत की जाये। वस्तुतः सदस्यों में इस बात को लेकर परस्पर तर्क-वितर्क हो सकता है कि उद्घोषणा के प्रवर्तन की जो दो महीने की अवधि रखी गई वह ज्यादा है। एक ऐसे देश के लिए जहां एक प्रदेश दूसरे से बहुत दूर है और आने जाने में काफी समय लग जाता है, जब उद्घोषणा के सम्बन्ध में कोई इस आशय का प्रावधान हम संविधान में रख रहे हैं कि अमुक अवधि के बाद वह प्रवर्तन में रहेगी, तो ऐसे प्रावधान को तंग रखने में कोई फायदा नहीं है क्योंकि एक माह से कम की अवधि में संसद् का आहूत किया जाना असम्भव सा ही है और फिर आपात की उद्घोषणा के फलस्वरूप जिन कतिपय व्यवस्थाओं की आवश्यकता होगी उन पर विचार करने में भी तो उसे एक महीना लग जायेगा। जब तक संरक्षणमूलक यह प्रावधान वर्तमान है कि इन सभी मामलों में संसद् के निर्णय के अनुसार ही कार्यपालिका चलेगी, ये सभी प्रावधान ठीक-ठीक हैं और इनमें आपत्ति की कोई बात नहीं है।

एक बात श्री कामत ने कही थी जिसका जवाब दूसरे सदस्यों ने दे दिया है। उनका कहना यह था कि संविधान के इस भाग में हमें एक प्रावधान इस आशय का भी रखना चाहिये कि बिना मंत्रियों की राय लिये राष्ट्रपति कुछ न करेगा। संविधान की सारी योजना ही इस बुनियाद पर रखी गई है कि राष्ट्रपति संविधानिक प्रमुख रहेगा; यद्यपि यह बात कहीं लिपिबद्ध नहीं की गई है और कुछ दिन पहले किसी ने ठीक ही इस सम्बन्ध में प्रश्न किया था। पर यह एक ध्रुव सत्य है कि राष्ट्रपति केवल एक संविधानिक प्रमुख है और उससे अधिक कुछ नहीं है। वह अपनी शक्तियों का प्रयोग मंत्रियों की राय से ही कर सकता है। यदि हम इस भाग में ऐसा प्रावधान रख देते जिसमें स्पष्ट रूप से यह बात कही गई हो तो इससे यह अर्थ लगाया जायेगा कि संविधान के अन्य प्रावधानों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति अपनी शक्तियों का प्रयोग अपनी ही मरजी से कर सकता है। यह अर्थ केवल इस आधार पर लगाया जा सकेगा कि इस भाग में एक प्रावधान इस आशय का वर्तमान रहेगा कि राष्ट्रपति अपने मंत्रियों की राय से ही इस भाग द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। जब तक कि सभी स्थलों पर यह बात न रख दें, केवल यहां इस तरह का प्रावधान रखना ठीक न होगा। फिर तो जिस उद्देश्य की हम सिद्धि चाहते हैं वही पर्याप्त रूप से सिद्ध न हो सकेगा क्योंकि एक स्थल विशेष पर यह उल्लेख रहेगा कि वह मंत्रियों की राय से ही अपनी शक्ति का प्रयोग करेगा। वस्तुतः राष्ट्रपति बिना मंत्रियों की राय के कुछ कर ही नहीं सकता और अगर वह ऐसा करता है और स्वेच्छा से अपनी शक्तियों का प्रयोग करने लगता है, तो अनुच्छेद 50 के तथा उसके अनुवर्ती अनुच्छेदों

के प्रावधान उस पर लागू किये जा सकते हैं और उसे प्राभियुक्त करके पद से निष्कासित कर दिया जा सकता है।

इस भाग के अगले अनुच्छेद पर हम आगे चलकर विचार करेंगे। आपात-प्रावधानों को हम दो हिस्सों में विभक्त कर सकते हैं। एक वह हिस्सा जिसमें राष्ट्रपति को संविधान की रक्षार्थ कार्रवाई करने का अधिकार दिया गया है उस स्थिति के लिये जबकि किसी गम्भीर आपात की विद्यमानता से समूचे देश पर संकट की आशंका हो। दूसरा हिस्सा वह है—और इसे प्रस्तुत भाग का भाग (ख) कहना चाहिये—जिसमें राष्ट्रपति को हस्तक्षेप का अधिकार दिया गया है किसी ऐसी स्थिति के लिये, जबकि किसी आपात से किसी राज्य का शासन संविधान के अनुसार न चलाया जा सकता हो। उस अनुच्छेद पर डॉ. अम्बेडकर एक संशोधन यथासमय उपस्थित करेंगे और उस समय हम लोगों को उस पर अपना विचार व्यक्त करने का मौका मिलेगा। फिलहाल हमारा प्रयोजन केवल अनुच्छेद 275 से है और इस पर विचार करते समय हमें यह नहीं सोचना है कि अपने संघ के किसी राज्य के प्रदेश में अगर कोई आपात विद्यमान होता है जिससे इस राज्य का प्रशासन संविधानानुसार न चल पाये, तो उसके लिये क्या व्यवस्था हो। वह तो एक भिन्न ही मसला है और जैसाकि मैं कह चुका हूं राज्यों के सम्बन्ध में भी मसौदा-समिति ने सदा इस बात का ख्याल रखा है कि संसद् की शक्तियों का किसी तरह न्यूनन न होने पाये। अगर कुछ लोग यहां यह आलोचना करते हैं कि ये प्रावधान तो ऐसे हैं कि इनसे मूल अधिकारों पर आक्रमण होता है, नागरिकों के विशेषाधिकारों का अल्पीकरण होता है, तो उनसे मैं पूछता हूं कि नागरिकों के जो प्रतिनिधि संसद् में रहेंगे, वह किस लिये रहेंगे? नागरिक स्वातन्त्रय के—यह शब्द आजकल बहुत चल गया है पर इसका वास्तविक अर्थ क्या है इसे भगवान् ही जाने—स्वच्छंद उपयोग पर अगर कोई अल्पकालिक प्रतिबन्ध ही लगाया जाता है तो इस पर माननीय मित्र श्री तजम्मुल हुसैन को क्यों आपत्ति हो रही है? आखिर जनता के 750 प्रतिनिधि संसद् में रहेंगे ही, जो सदा इसकी सावधानी रखेंगे कि नागरिक स्वातंत्र्य पर अनावश्यक प्रतिबन्ध न लगे। इतने जन प्रतिनिधियों के रहते उन्हें क्यों इस पर आपत्ति हो रही है? मुझे इसमें संदेह नहीं कि मि. तजम्मुल हुसैन खुद इससे सहमत होंगे कि कतिपय आकस्मिक स्थितियों में नागरिक स्वातन्त्र्य पर प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक होगा। उदाहरण के लिये, वर्तमान राशनिंग या खाद्य-नियंत्रण को ही लीजिये। इससे भी तो नागरिक स्वातन्त्र्य का न्यूनन ही होता है। आप कहीं से भी एक मन चावल या गेहूं नहीं ले सकते हैं। पर आप इसे बरदाश्त करते हैं। आपात की स्थिति में राज्य की मदद के लिए और संविधान की रक्षा के लिए तो शायद आपको इससे भी अधिक नियंत्रण बरदाश्त करने होंगे। और अगर नागरिक स्वातन्त्र्य पर अनावश्यक प्रतिबन्ध लगाया जाता है तो उसकी जिम्मेदारी होगी संसद् के सदस्यों पर, जो कि जनता के सही शासक हैं न कि कार्यपालिका पर। अगर कार्यपालिका जनप्रतिनिधियों के कहने के अनुसार नहीं चलती है तो उसे अपनी जगह से हट जाना पड़ेगा। पर यह तभी होगा जबकि जनता के प्रतिनिधि दृढ़ता से काम लें। इसलिये मैं तो यह महसूस करता हूं कि ये जो शोर मचाया जा रहा है कि इन प्रावधानों से नागरिक स्वातंत्र्य का अनुचित न्यूनन होता है वह सही नहीं है। आखिर संसद् को तो यह शक्ति प्रदत्त ही है कि वह इस बात का ख्याल रखे कि शासन जनता को उतना नागरिक स्वातन्त्र्य अवश्य प्रदान करे कि

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

जितना कि राज्य एवं संविधान की रक्षा को ध्यान में रखते हुये संगत हो। जब तक संसद् की इस शक्ति का अल्पीकरण नहीं किया जाता है लोगों का ऐसा शोर मचाना बिल्कुल गलत है। इसलिये मेरा कहना यह है कि इन प्रावधानों के विरुद्ध जो बातें कही गई हैं उनमें अधिकांश ऐसी हैं जो बेमतलब हैं क्योंकि संसद् की शक्ति अक्षुण्ण रखी गई है। बहस-मुबाहिसे में हस्तक्षेप करके मैं सभा को इतना ही बताना चाहता था कि संविधान में इन प्रावधानों को रखने में किसी को भी कोई खुशी नहीं हो सकती है, पर साथ ही यह भी बात है कि अगर हम संविधान में ऐसे प्रावधान नहीं रखते हैं जिनसे उन लोगों को जिन्हें कि भविष्य में देश के भाग्य को सम्भालना है, संविधान की रक्षा की क्षमता प्राप्त होती है, तो हम अपने कर्तव्य-पालन में चूकते हैं। और सभा को मैं यह बात इसलिये बताना चाहता था कि उसके सभी सदस्य और बाहर के लोग भी यह समझ जायें कि इन आपात-प्रावधानों को हमें यह समझकर बरदाश्त करना पड़ेगा कि बुरे होने पर भी ये हमारे लिये आवश्यक हैं। बिना इन प्रावधानों के बहुत सम्भव है कि संविधान-निर्माण का हमारा सारा प्रयास व्यर्थ चला जाये और संविधान संकट में पड़ जाये, क्योंकि संविधान की रक्षा के लिए जब तक कार्यपालिका को पर्याप्त शक्ति न प्राप्त रहेगी यह आशंका रहेगी ही। इन शब्दों के साथ, श्रीमान्, डॉ. अम्बेडकर के संशोधन का मैं समर्थन करता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी को मैं यह बताना चाहूंगा कि वाइमार संविधान के अनुच्छेद 48 का हवाला देकर मैं यह बताना चाहता था कि हिटलर ने अपनी तानाशाही की स्थापना के लिए इन्हीं प्रावधानों का प्रयोग किया था।

***अध्यक्षः** अब शायद डॉ. अम्बेडकर बोलना चाहें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं नहीं समझ पाता हूं कि बोलूं या न बोलूं। बहस-मुबाहिसे में बहुत सी बातें कही गई हैं। वाद-विवाद में भाग लेने वाले सदस्यों की अगर यही इच्छा हो कि मैं कुछ कहूं, तो मैं बड़ी खुशी से ऐसा करूंगा पर आज नहीं कल।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि जितने भी प्रश्न उठाये गये थे उन सबका जवाब श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने दे दिया है। अब आपको उनका जवाब देने की जरूरत शायद नहीं है।

***पं. ठाकुर दास भार्गवः** अब हमें और किसी जवाब की अपेक्षा नहीं है।

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता कि आपका उत्तर में न बोलना उन सदस्यों के प्रति अपमान होगा जिन्होंने कि वाद-विवाद में भाग लिया है। पर अगर आप जवाब में बोलना चाहते हैं, तो अवश्य ही आपको ऐसा करने से मैं नहीं रोकूंगा। जवाब के लिए क्या आप अधिक समय लेंगे?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** जवाब देने में तो कुछ समय लगेगा। पर मैं यह समझता था कि अब जवाब देने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि श्री टी.टी. कृष्णमाचारी सभी बातों का जवाब दे चुके हैं।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** उनकी बात हम कल सुनें। पर हम उनको सुनना अवश्य चाहते हैं।

***अध्यक्ष:** मैं केवल समय का ही नहीं ख्याल कर रहा हूं। पर मैं नहीं समझता हूं कि जवाब की कोई आवश्यकता है। अस्तु, अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 275 के खण्ड (2) के उपखण्ड (क) में 'may be revoked' (प्रतिसंहत की जा सकेगी) शब्दों के आगे 'or varied' (या परिवर्तित की जा सकेगी) शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधन सम्बन्धी संशोधनों की सूची 1 (दूसरा सप्ताह) के संशोधन नं. 111 में प्रस्तावित अनुच्छेद 275 में खण्ड (1) में 'President' शब्द के आगे 'Acting upon the advice of this Council of Ministers' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधन सम्बन्धी संशोधनों की सूची 1 (दूसरा सप्ताह) के संशोधन नं. 111 में प्रस्तावित अनुच्छेद 275 के खण्ड (3) में 'by war or by external aggression or' (युद्ध या बाह्य आक्रमण) शब्दों को हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

"कि संशोधन सम्बन्धी संशोधनों की सूची 1 (दूसरा सप्ताह) के संशोधन नं. 111 में प्रस्तावित अनुच्छेद 275 में खण्ड (3) में 'occurrence of war or of any such aggression or disturbance' शब्दों की जगह 'occurrence of such disturbance' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब मैं डॉ. अम्बेडकर द्वारा उपस्थित किये गये संशोधन पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 275 के स्थान पर निम्नलिखित अनुच्छेद रखा जाये:–

'275. (1) If the President is satisfied that a grave emergency exists whereby the security of India or of any part of the territory thereof is threatened, whether by war or external aggression

Proclamation of Emergency.

[अध्यक्ष]

or internal disturbance, he may, by Proclamation, make a declaration to that effect.

(2) A Proclamation issued under clause (1) of this article (in this Constitution referred to as "a Proclamation of Emergency"—

(a) may be revoked by a subsequent Proclamation;

(b) shall be laid before each House of Parliament;

(c) shall cease to operate at the expiration of two months unless before the expiration of that period it has been approved by resolutions of both Houses of Parliament:

Provided that if any such Proclamation is issued at a time when the House of the People has been dissolved or if the dissolution of the House of the People takes place during the period of two months referred to in sub-clause (c) of this clause and the Procaimation has not been approved by a resolution passed by the House of the People before the expiration of that period, the Proclamation shall cease to operate at the expiration of thirty days from the date on which the House of the People first sits after its reconstitution unless before the expiration of that period resolution approving the Proclamation have been passed by both Houses of Parliament.

(3) A Proclamation of Emergency declaring that the security of India or of any part of the territory thereof is threatened by war or by external aggression or by internal disturbance may be made before the actual occurrence of war or of any such aggression or disturbance if the President is satisfied that there is imminent danger thereof.' "

[275. (1) यदि राष्ट्रपति को यह समाधान हो जाये कि गम्भीर आपात विद्यमान है, जिससे कि युद्ध अथवा बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशान्ति से भारत या उसके राज्यक्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा संकट में है, तो वह उद्घोषणा द्वारा इस आशय की घोषणा कर सकेगा।

(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के अधीन की गई घोषणा (जो इस संविधान में आपात-उद्घोषणा के नाम से निर्दिष्ट की गई है)—

(क) उत्तरवर्ती उद्घोषणा द्वारा प्रतिसंहत की जा सकेगी।

(ख) संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जा सकेगी।

(ग) दो माह की समाप्ति पर प्रवर्तन में न रहेगी, जब तक कि संसद् के दोनों सदनों के संकल्पों द्वारा इस अवधि की समाप्ति से पहले अनुमोदित न कर दी जाये:

परन्तु यदि ऐसी कोई उद्घोषणा उस समय निकाली गई है, जबकि लोक सभा का विघटन हो चुका है अथवा लोक सभा का विघटन इस खण्ड के उपखण्ड (ग) में निर्दिष्ट दो मास की कालावधि के भीतर हो जाता है तथा यदि उस कालावधि की समाप्ति के पहले लोक सभा द्वारा पारित एक संकल्प के द्वारा उस उद्घोषणा का अनुमोदन नहीं हुआ है, तो उद्घोषणा उस तारीख से जिसमें कि लोक सभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, तीस दिन की समाप्ति पर प्रवर्तन से पूर्व उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाला एक संकल्प संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित नहीं हो जाता है।

(3) यदि राष्ट्रपति को समाधान हो जाये कि युद्ध या बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशान्ति का संकट सन्निकट है, तो युद्ध अथवा ऐसी कोई आक्रमण या अशान्ति के होने से पहले भी ऐसा घोषित करने वाली आपात की उद्घोषणा, कि भारत की अथवा भारत के राज्य-क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा इस प्रकार से संकट में है, की जा सकेगी।]

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***अध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 275 को, संशोधित रूप में, संविधान का अंग समझा जाये।"

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

अनुच्छेद 275 संशोधित रूप में संविधान में शामिल किया गया।

इसके पश्चात् सभा बुधवार तारीख 3 अगस्त सन् 1950 के प्रात: 9 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।